प्रकरण–१

बड़ौदा की संगीत परंपरा

(१७६२ से १९५० तक)

बड़ौदा की संगीत परंपरा

(१७६२ से १९५० तक)

बड़ौदा के संगीत की विरासत तब से शुरु होती है, जबसे इस प्रांत में लोगों ने रहेना शुरु किया था । स्वर और ताल के मिलन से प्राप्त होने वाले आनंद के शोध में जो स्त्री, पुरुष अपने बचपन, जवानी और प्रौढ़त्व में संगीत गाते-बजाते रहे, उनके अविरत प्रयास के फलस्वरुप ही परंपरागत मौखिक संगीत बड़ौदा में जीवित रहा। इस प्रदेश के दो हजार साल के इतिहास में राज घरानों के विभिन्न राजाओं में हुईं लड़ाइयों, तथा उन लड़ाइयों में हुई हार-जीत तथा राजकीय परिस्थितियों का वर्णन तो मिलता ही है; परंतु यहाँ हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषिक बदलाव के बारे में लिखा हुआ नहीं मिलता है। विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ रहने आये लोगों के बारे में भी कोई जानकारी नहीं मिलती। राजकीय बदलाव तो बहुत हुए होंगे; पर उन बदलावों का समाज में रहनेवाले लोगों के मन पर क्या असर हुआ होगा, यह बात समझ से परे है। कोई भी समाज धर्म और परंपरा में होनेवाले बदलाव को आसानी से नहीं अपनाते ।

शताब्दियों से बड़ौदा में बसे लोगों ने अनेक भाषाएँ बोली होंगी; तथा यहाँ के स्त्री पुरुषों ने खुद के तथा लोगों के मनोरंजन के लिए अनेक गीत गाये होंगे, याद रखे होंगे तथा नये-नये गीतों की रचना की होंगी; पर इस बारे में कोई लिखित दस्तावेज नहीं मिलता। सामाजिक, भाषिक बदलाव का असर परंपरा से गाये जाने वाले गीतों पर आवश्य ही हुआ होगा । गीतों के भाव एवं भावार्थ में बदलाव आया ही होगा।

बड़ौदा में रहने वाले लोगों में बदलते रीति-रिवाजों के अनुसार शतकों से चले आये गीतों में अवश्य ही परिवर्तन आया होंगा और उसी से ही बड़ौदा की

एक नवीन संगीत-शैली बनी होगी । गुजरात में प्रचलित लोक-संगीत गरबा, गरबी, ढोल, मान भट्ट के आख्यान, लोरी गीत (हालरड़ा), लग्न गीत, मरणोत्तर वियोग गीत (मरसिया), भक्ति गीत इत्यादि को सुनने-देखने पर यहाँ के लोगों की पसंद को अच्छी तरह से जाना जा सकता है । इन गीत प्रकारों की सुंदरता, भावनात्मकता कायम रखने की क्षमता की ओर शायद ही किसी ने परीक्षण किया होगा। सन् १८४९ में दयाराम ने जिस गरबा गीत की रचना की है, उसमें बड़ौदा के विविध दरवाजों, तालाबों, चौराहों तथा भौगोलिक स्थिति का वर्णन पाया जाता है। उससे आसानी से समझा सकता है कि उस समय समाज में गरबा कितना प्रचलित था । उस समय के गीतों से यह स्पष्ट होता है की पारंपारिक गरबा में लोगों को बहुत रुचि रहती थी। ।

बड़ौदा की इच्छागौरी ऊँची आवाज और एक खास ढंग से गरबा गाती थी। कुछ दशक पूर्व इच्छागौरी के गरबा गायन ने लोगों को बड़ा प्रभावित किया था। उस समय के लोग इच्छागौरी के गरबा गायन को असाधारण मानते थे। बड़ौदा के सभी राजाओं के समय में गरबा गायन मनोरजंन का एक अभिन्न अंग बन चुका था।

वहा, सन् १८०० पुणे में नाना फडणवीस की मृत्यु के बाद बहुत से मराठी लोग सुरक्षा की दृष्टि से बड़ौदा में रहने आये और साथ में महाराष्ट्र की लोक संगीत कि कला भी अपने साथ ले कर आये। महाराष्ट्र के लोक संगीत पोवाडा, लावणी, तमाशा इत्यादी को भी बड़ौदा के संगीत में स्थान मिला था। बड़ौदा में रहने वाले मराठी लोग पोवाडा, लावणी गायन तथा नृत्य करनेवाले कलाकारों को पसंद और प्रोत्साहित करते थे। सयाजीराव महाराज तृतीय की कृपा से मराठी और गुजराती लोक संगीत के साथ-साथ रंगमंच के कलाकारों को भी काफी प्रोत्साहन मिला।

उस समय की कुछ प्रचलित गायन शैली, पद्धति तथा समाज की तरफ ध्यान देना भी आवश्यक होगा। उसमें कवि प्रेमानंद के आख्यान प्रमुख है । प्रेमानंद अपने आख्यानों में जो कथाएँ सुनाते थे, उनको एकतारे जैसे तंतु वाद्य के साथ गायन स्वरुप में प्रस्तुत करके लोगों को मंत्रमुग्ध कर देते थे । सभी कवितायें गुजराती भाषा में होती थी । गायन स्वरुप में होने से मनोरंजन के साथ याद रखना भी आसान होता था। वैष्णव मंदिर संख्या में कम थे । परंतु उन्होंने अपनी मथुरा-वृंदावन की पुष्टिमार्गी संगीत परंपरा से कीर्तनकार और संगीत कलाकारों को आकर्षित किया था, जिसका स्वरूप प्राचीन ध्रुपद जैसे शास्त्रीय संगीत से मेल रखनेवाला था । यह संगीत भक्तों को शास्त्रीय संगीत के मनोरंजन के साथ भक्ति का भी अनुभव कराते थे।

बड़ौदा के सांगीतिक इतिहास का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि उस्ताद मौलाबक्ष ने अपने जीवन का सर्वाधिक व अमूल्य समय बड़ौदा में ही व्यतीत किया था । मौलाबक्ष ने बड़ौदा के लगातार तीन शासक १.ख़ंडेराव गायकवाड़ (शासनकालः सन् १८५७-१८७०), मल्हारराव गायकवाड़ (शासनकालः सन् १८७०-१८७५) और सयाजीराव गायकवाड़ (शासनकालः सन् १८८१-१९३९) के कार्यकाल में अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान की थीं । विशेष रुप से इन तीनों शासकों के शासन काल के दरम्यान शास्त्रीय संगीत को बड़ौदा में काफी मान सम्मान प्राप्त हुआ । संगीत एवं नृत्य के शौकीन इन गायकवाड़ शासकों ने देश के कई प्रतिष्ठित कलाकारों को अपने दरबार में आमंत्रित किया था । उनके इसी प्रोत्साहन के फलस्वरुप आज बड़ौदा एवं देश में शास्त्रीय संगीत पुनः अपने सर्वोच्च स्थान पर विराजमान होने में सफल हुआ है ।

१.१ गायकवाड़ परिवार का बड़ौदा में आगमन

इतिहास में बड़ौदा के गायकवाड़ शासकों के नाम एवं उनके शासन काल की जानकारी तो मिलती है; किन्तु उस वक्त की सांगीतिक परिस्थितियाँ कैसी थी, इस के बारे में प्रचुर मात्रा में जानकारी प्राप्त नहीं होती । मौखिक परंपरा एवं उपलब्ध इतिहास के माध्यम से वर्ष १६६४ से १९५० तक के बड़ौदा की सांगीतिक परंपरा एवं विकास का संक्षिप्त अध्ययन करना इस प्रकरण का मुख्य उद्देश्य है ।

बड़ौदा की सांगीतिक धरोहर एवं उत्थान का इतिहास लिखने से पहले इस शहर की उत्पत्ति एवं शासन काल संबंधित जानकारी को संक्षेप में समझना अप्रासंगिक न होगा ।

पहले गुजरात में राजपूतों का शासन था । उनके कार्यकाल में चावड़ा, सोलंकी, वाघेला वंश के शासकों ने शासन किया था । राजपूतों का आखरी शासक करणघेलो नामक राजा था । दिल्ली के बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण करके उसे अपने कब्जे में ले लिया और गुजरात को दिल्ली की सल्तनत में शामिल कर लिया और गुजरात में शासन चलाने के लिए अपने सूबेदारों को नियुक्त किया । किन्तु सन् १७०७ में मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के साथ मुगल साम्राज्य का पतन होना शुरु हो गया था । इस तरह जैसे-जैसे दिल्ली के बादशाह कमजोर होते गए वैसे-वैसे विभिन्न प्रांतों के सूबेदार भी स्वतंत्र होने लगे । औरंगजेब के शासन काल के अन्त में दक्षिण में शिवाजी महाराज भी मुगलों की सत्ता को गिराने का प्रयत्न कर रहे थे । शिवाजी महाराज ने हिन्दूओं में नया जोश और देशाभिमान उत्पन्न किया था । औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् करीब ५० वर्षो में मराठा शासकों ने हिन्दुस्तान के बहुत से हिस्सों को अपने कब्जे में कर लिया । सन् १७२० में दिल्ली के बादशाह

महंम्मदशाह के पास से गुजरात की कर वसूली का हक भी मराठाओं ने अर्जित कर लिया था ।"[१]

बड़ौदा, आज पश्चिम भारत के गुजरात राज्य का प्रमुख शहर है । १७ वीं शताब्दी में यह शहर मुगल साम्राज्य के आधीन था । सन् १६६४ में शिवाजी महाराज ने गुजरात के सूरत राज्य पर कई आक्रमण किये और बल पूर्वक धन की वसूली कि और यहीं से गुजरात में मराठा शासकों का प्रवेश माना जाता है। इस तरह गुजरात में मुगल साम्राज्य को समाप्त करके मराठा शासन को अस्तित्त्व में लाने में शिवाजी महाराज का बहुत बड़ा योगदान था । शिवाजी का स्वर्गवास सन् १६८० में हुआ । १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उनके उत्तराधिकारी भोंसले के शासन में पेशवाओं का वर्चस्व बढ़ा । पेशवाओं द्वारा होनेवाले अतिरेक से त्रस्त उस समय के तीन शक्तिशाली मराठा परिवार होलकर, शिंदे और गायकवाड़ ने पेशवा के शासन को समाप्त करके भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अपने वर्चस्व को स्वाधीन रुप से स्थापित किया ।"[२]

सन् १६७२ में शिवाजी महाराज के सेनापति मोरो त्रिंबक पिंगळे ने फिर से सूरत के दक्षिण में पारनेरा तथा बागलाण के साल्हेर किले पर कब्जा किया । किन्तु यह किला गुजरात से दक्षिण में जाने वाले मुख्य रास्ते पर होने की वजह से मराठों का गुजरात पर पूर्ण अधिकार स्थापित नहीं हो सका । इसीलिए सन् १६९९ में सातारा के छत्रपति राजाराम महाराज ने अपने सेनापति खंडेराव दाभाड़े को गुजरात में कर वसूली के लिए भेजा । सन् १७०५ में खंडेराव दाभाड़े ने बागलाण, सूरत और नर्मदा के पार जाकर मुगल सेनाओं को पराजित किया और गुजरात पर अपना वर्चस्व स्थापित कीया । दाभाड़े कि इस जीत में उनके लश्कर के सरदार दामाजीराव गायकवाड़ की अहम् भुमिका थी । खंडेराव दाभाड़े ने गुजरात तथा काठियावाड़ में अपने दल संगठित किये और सेनापति दामाजीराव गायकवाड़ को मराठा मंडल का उपप्रधान नियुक्त किया ।

दामाजीराव गायकवाड़ से ही बड़ौदा में गायकवाड़ शासन का शुभारंभ हुआ माना जाता है । सन् १७२० में दामाजीराव गायकवाड़ ने बालापुर की लड़ाई में मुसलमान शासक हैदर कुली खान को पराजित करके मराठा साम्राज्य स्थापित किया । उनके इस पराक्रम के कारण सातारा के शाहु छत्रपति ने दामाजीराव गायकवाड़ को "समशेर बहादुर" कि पदवी से सम्मानित किया। सन् १७२० में खंडेराव दाभाडे और दामाजीराव गायकवाड़ का अवसान हुआ । दामाजीराव ने निःसंतान होने के कारण अपने भाई के पुत्र पिलाजीराव गायकवाड़ को दत्तक लिया । अपने चाचा के पद्चिहनों पर चलकर बहादुर पिलाजीराव ने सन् १७२१ में सोनगढ़ पर कब्जा किया और गुजरात की जागीर में कर वसूली का कार्य शुरु किया । पिलाजीराव ने सबसे पहले बड़ौदा और डभोई पर कब्जा किया था । मुगल सरदारों के अत्याचार से त्रस्त गुजराती पाटील, पादरेकर, एक छाणीकर व एक भायलीकर ऐसे तीन पटेल वर्गो के लोगों ने गायकवाड़ों को सहायता देना शुरु किया ।"[३]

सन् १७३२ में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने पिलाजी राव के विरुद्ध षड्यंत्र करके डाकोर में उनकी हत्या की और बड़ौदा पर कब्जा कर लिया । पिलाजीराव का पुत्र दामाजीराव गायकवाड़ द्वितीय (१७३४-१७६८) काफी बहादुर एवं पराक्रमी राजा थे । सन् १७३४ में बड़ौदा पर आक्रमण करके अभयसिंह के सरदार शेरखान बाबी को परास्त करके दामाजीराव ने अपने पिताजी की हत्या का बदला लिया और तब से बड़ौदा शहर स्थायी रुप से गायकवाड़ के कब्जे में आया । सन् १७६२ में दामाजीराव गायकवाड़ द्वितीय ने अपनी राजधानी व्यारा घने जंगलो में बसे सोनगढ़ से विश्वामित्री नदी के किनारे बसे हुवे बड़ौदा में स्थानातंरीत कि ।"[४] मराठाओं ने इस क्षेत्र के सभी मुगल शासकों को खदेड़कर बाहर किया तथा धार्मिक सहिष्णुता युक्त राज्य की स्थापना की । इस तरह पिलाजी राव और दामाजीराव इन दों पराक्रमी पुरुषों ने

ही गुजरात में गायकवाड़ घराने के साम्राज्य का उदय किया । दक्षिण गुजरात के बड़ौदा, नवसारी और गणदेवी तथा उत्तर गुजरात के वीजापुर, पाटण, विसनगर, सामी, मुजपुर, वड़नगर, खेरालु, राधनपुर व सिद्धपुर इत्यादि शहरों तक अपने साम्राज्य को स्थापित किया । सन् १७६८ में दामाजीराव द्वितीय की मृत्यु हुई । दामाजीराव की तीन पत्नियों से गोविंदराव, प्रथम सयाजीराव, फत्तेसिंहराव और मानाजीराव ऐसे चार पुत्रों का जन्म हुआ । सन् १७८९ में फत्तेसिंहराव, सन् १७९२ में प्रथम सयाजीराव, व सन् १७९३ में मानाजीराव के एक के बाद एक हुई अचानक मृत्यु से उनके ज्येष्ठ पुत्र गोविंदराव गायकवाड़ का राजनीति में प्रवेश हुआ । उनके इस पदार्पण से अन्य शासकों में मतभेद पैदा हो गया, जिसमें प्रमुख रुप से पेशवा तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी शामिल थी ।"[५]

अहमदाबाद में पेशवा के गर्वनर आबा शेलूकर कार्यरत थे। जिन्होंने शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था । तब गोविंदराव गायकवाड, जो कि पेशवा के सहशासक थे, को विद्रोह दबाने का फरमान जारी किया गया । गोविंदराव गायकवाड़ (१७९५-१८००) ने यह विद्रोह दबाने के कार्य कर दिखाया । इस कार्य में जो भी आर्थिक नुकसान हुआ। उसकी भरपाई के लिए पेशवा शासित यह प्रदेश गायकवाड़ को पट्टे पर दिया गया । इस तरह अहमदाबाद, जो कि सन् १४१७ से गुजरात की राजधानी था, अब बड़ौदा के आधीन आ गया और इस तरह बड़ौदा गुजरात का प्रमुख शहर बन गया ।"[६]

यह मतभेद सन् १८०० तक चलता रहा किन्तु आम जनता को इस में तनिक भी रुचि नही थी तथा जनता किसी भी तरह उससे बाहर निकलना चाहती थी । प्राचीन धरोहरों व संस्कृति को संभाल पाना तथा उसे विकसित करना मुश्किल हो गया था । जनता का ध्येय किसी तरह भी खुद को तथा परिवार के जीवन को युद्ध की विभिषिका से बचाना और जीवन अर्जन के लिए अर्थ को सँभालना था, और इसी उददेश्य से जनता एकता के सूत्र में इस तरह बंध गये

कि ऐसा पहले कभी भी नही हुआ था । सभी जाति समुदाय की यह एकता गायकवाड़ के राज्य में अच्छी तरह से फली फूली और सन् १९५० तक यथावत रही थी । इसी एकता ने भविष्य के कला एवं सांस्कृतिक सौहार्द की मजबूत नींव रखी तथा कभी न टूटनेवाली मित्रता के बंधन का निर्माण किया ।

सन् १८०० में श्री नाना फडणवीस की मृत्यु ने पेशवा दरबार को हिलाकर रख दिया, जिसके फलस्वरूप पूना (महाराष्ट्र) से कई अनुभवी दरबारियों तथा कलाकारों का राज्याश्रय, सुरक्षा एवं आजिविका हेतु बड़ौदा आगमन हुआ । इस प्रकार कितने ही परिवार पुना से आकर यहाँ बस गये और बड़ौदा में बसनेवाली विविध भाषी प्रजा जैसे गुजराती, मुसलमान एवं मराठी इत्यादि के संस्कृति, भाषा, संगीत एवं साहित्य का आदान प्रदान हुआ। यह बड़ौदा को सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विकसित करने के लिए एक नई रोशनी लेकर आया था ।

गायकवाड़ शासकों ने बड़ौदा को गुजरात की राजधानी बनाया । विश्वामित्री नदी के आसपास बसे इस शहर को बरगद के "पेड़ों का शहर" के नाम से भी जाना जाता है । बरगद के अधिक पेड़ होने की वजह से इस शहर को "वडपत्रका" के नाम से भी पहचाना जाता था ।"[७] सुयोग्य शासन, प्रमुख भूमिमालिकों और धन उधारदाताओं के योगदान के कारण, यह एक विकसित शहर बन गया। विशेष रुप से सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय के शासन काल में कई झीलों, संस्थानों, सडकों, व शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का निर्माण किया गया । गुजरात के अन्य राज्यों जैसे सूरत, राजकोट, भावनगर, अहमदाबाद आदि की अपेक्षा बड़ौदा में शिक्षा, साहित्य, ललित कलाओं का अधिक विकास हुआ और इनके खास संस्थान भी विकसित किये गए ।

हिम आच्छादित उत्त्तुंग गिरिशिखरों के बीच धीरे-धीरे से उदित होने वाले सूर्यं की भाँति बड़ौदा को भी संगीत के राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय फलक पर धीमी

गति से तथा कुछ देर से ही स्थान मिला; किन्तु यह बदलाव अत्यंत ऐतिहासिक तथा क्रमिक विकास के पथ पर गतिमान था । उस स्थिति की बड़ौदा आज भी गवाही दे रहा है।

१.२ बड़ौदा संस्थान में संगीत का प्रारंभ

राजधानी बड़ौदा, महाराजा आनंदराव (१८००-१८१९) के जन्म तक बार बार होने वाले युद्ध और विद्रोह से पायमाल हो चुका था । उस समय बड़ौदा पूरी तरह से दरिद्रता के आवरण से ढँका हुआ था । यद्यपि बड़ौदा का शासक आर्थिक रुप से निर्धन था, फिर भी उस वक्त के धन के अधिपति जैसे हरिभक्ति, मंगल पारेख, सामल बेचर, महिराल इत्यादि के आर्थिक योगदान एवं सहयोग के कारण बड़ौदा शहर अहमदाबाद तथा बाहर के लोगों को आजिविका तथा व्यवसाय प्रदान करने की दृष्टि से अपनी और आकर्षित करता था । बड़ौदा शहर ने अपनी दरिद्रता को पीछे छोड़कर धन कि अधिकत्ता के लिए डॉलिया (कुर्सिया), विदेशी कुत्तो तथा घोड़ों का व्यवसाय हस्तगत कर लिया था । आर्थिक दरिद्रता से बाहर आने के लिए बड़ौदा वासी दिनों दिन व्यवसाय प्रिय एवं वाणिज्य लक्षी बनता जा रहा था । शायद इसी कारण बड़ौदा की प्रजा संगीत, नृत्य, नाट्य जैसे विभिन्न ललित कलाओं के प्रति उदासींन रही होगी । इन कलाओं के प्रति जनमानस में प्रेम, रुचि तथा गुणवत्ता लगभग समाप्त होती दृष्टिगोचर हो रही थी।

सन् १८१८ में पेशवाई के अंत के साथ ईस्ट इन्डिया कंपनी एक प्रमुख राजनैतिक शक्ति के रुप में भारत भर में उदित हुई । बॉम्बे सरकार ने पुणे को उनका ग्रीष्म- कालीन निवास स्थान बनाया । महाराष्ट्र के साथ-साथ गुजरात को भी बॉम्बे राज्य में सम्मिलित कर लिया गया, जो कि पेशवाओं का भी कार्यक्षेत्र था। इस कारण पुणे तथा महाराष्ट्र से कई लोग नौकरी तथा व्यवसाय के लिए बड़ौदा स्थानान्तरित हुए । ईस्ट इंडिया कंपनी ने जल्द ही गायकवाड़ की

मालिकाना सम्पति को पट्टे पर लेना शुरू किया । बड़ौदा, गुजरात का बहुत बडा राज्य होने से भाग्यशाली रहा और अपना राजनैतिक अस्तित्व बनाए रख सका था । अन्य शहरों के मुकाबले बड़ौदा प्रगति करता गया एवं उत्तर तथा दक्षिण संस्कृतियों के मिलन का केन्द्र बन गया ।

सन् १८१९ में सयाजीराव गायकवाड़ द्वितीय बड़ौदा के महाराजा बने । उनका जन्म सन् १८०० में हुआ था तथा सुसंस्कृत परिवेश में उनका लालन-पालन हुआ था। वे काफि अल्पव्ययी शासक थे । उन्होंने अपने जीवन में कई कठिनाइयों का सामना किया था। उनके परिवार ने गरीबी देखी थी । उन्होंने बड़ौदा की ध्वस्त होती अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए कठिन परिश्रम किया था। उन्होंने खुद के बैंक की भी स्थापना की थी, जिसका "गणेश ईश्वर पेढ़ी" नाम से नामकरण किया गया था। इस बैंक का व्यवसाय इस प्रकार बढ़ा कि, श्री सयाजीराव ने बड़ौदा शहर को आर्थिक रूप से सुदृढ बनाया।"[८] बड़ौदा कि आर्थिक परिस्थितियाँ अनुकुल होने के साथ-साथ राजा और प्रजा दोनों ही आत्मनिर्भर और आनंदित बनते जा रहे थे । अब वह समय आ चुका था, जब कठिण परिस्थितियों वाले भूतकाल को भूलकर राजा-प्रजा दोनों ही कला संस्कृति की ओर अपना ध्यान देने लगे थे ।

सयाजीराव द्वितीय संगीतकला के शौकीन थे। अपने अवकाश के समय में संगीत तथा नृत्य कला का आस्वाद जरुर लेते थे । कहा जाता है कि सयाजीराव द्वितीय ने ही बड़ौदा दरबार में "कलावन्त कारखाने" की स्थापना की थी ।

कलावंत कारखाना अर्थात् मनोरंजन करनेवाला एक विभाग, जिसके अंर्तगत गायक, वादक, नृत्यकार, नाटक, माइम, पहलवान, जादूगर, इत्यादी की नियुक्ती की जाती थी। जिसमें सर्वप्रथम सन् १८१९ में देवीदास नामक एक पुरुष गायक की नियुक्ती की गई थी। बादमें इस कलावन्त कारखाने में संगीत के

अधिक १० कलाकारों की नियुक्ति की गई थी, जिसमें दो कलावंतिनी, दो पखवाजी, डफवाजंत्री, कुछ गायक, वादक इत्यादि कलाकारों को कलावंत कारखाने के अन्तर्गत नौकरी दी गई थी । उनको रोजाना तथा त्यौहार के दिन मनोरंजन के लिए अपनी कलाकारी का प्रदर्शन करना होता था । महाराजा सयाजीराव द्वितीय के शासन काल के पुर्व बड़ौदा में कलावंतों को राज्याश्रय मिला हो, ऐसा नहीं दिखाई देता । इससे पहले सन् १८१७-१८ के समय तक मनोरंजनार्थ आने-जाने वाले कलाकारों की नियुक्ति एवं उनके मानधन देने की कोई सुव्यवस्थित प्रणाली उपलब्ध नहीं थी ।”[१]

महाराजा सयाजी राव द्वितीय के शासन काल में प्राचीन एवं अर्वाचीन शास्त्रीय संगीत जैसे ध्रुपद, धमार, ख्याल तथा ठुमरी आदि गायन प्रकारों ने बड़ौदा के संगीत में अपना स्थान अर्जित कर लिया था । इस काल में ख्याल, ठुमरी जैसे गायन प्रकार को आधुनिक शैली का माना जाता था । ध्रुपद, धमार गानेवाले गायक संगीतकार गायन के इस प्रकार को क्षुद्र एवं अति श्रृंगारिक गायकी मानते थे । यह विशेष एक बात थी की परिवर्तनशील, आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारक सयाजीराव द्वितीय ने बिना किसी भेद-भाव के इन सभी गायन प्रकारों एवं उनके कलाकरों को अपने दरबार में मान-सम्मान और राज्याश्रय दिया। अतः ख्याल, ठुमरी जैसे आधुनिक गायकी को प्रोत्साहन देकर उसे लोकप्रिय बनाने में बड़ौदा संस्थान का विशेष योगदान रहा है, कहना अतिशयोक्ती नहीं होगी । संगीत और नृत्य के शौकीन सयाजीराव महाराज द्वितीय ने अपनी पत्नी कोंडाबाई को संगीत सीखाने हेतु मथुरा के बैरागी देवीदास, जो गायन और सितार वादन में प्रवीण थे उन्हे नियुक्त किया था । सन् १८३५ में महाराजा ने देवीदास जी की संगीत विद्या और कोंडाबाई को दी जानेवाली संगीत शिक्षा से संतुष्ट होकर उनकी प्रशंसा की तथा सम्मान करते हुए राधा-वल्लभ मंदिर दान में दिया। यह मंदिर जूना सरकार वाड़ा, जो बड़ौदा के मांडवी भाग में

स्थित है, जो आज भी मथुरा देवीदास के संगीत निष्ठा और पवित्रता की याद दिलाता है । मंदिर की देखभाल के लिए दी जानेवाली आवश्यक धनराशि भी सरकारी खजाने से दी जाती थी । इस समय में लिखी गई पुस्तकों में यह स्पष्ट रुप से लिखा गया है कि महाराजा, देवीदास तथा उनकी ब्रजभाषा एवं गझल, ठुमरी तथा ख्याल की रचनाओं से बडे. प्रभावित हुऐ थे । देवीदास ने मराठी लावणी को ब्रजभाषा में तथा ठुमरीयों को मराठी में अनुवादित किया था। इस तरह का यह शायद पहेला प्रयोग था जिसके अन्तर्गत महाराष्ट्रियन तथा उत्तर हिन्दुस्तानीयों को एक दुसरे के संगीत को सीखने तथा जानने का मौका मिला । सन् १८४६ में देवीदासजी की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य प्रियदास और राखीदास को मंदिर के अधिकार बहाल किये गए ।"[१०]

सयाजीराव द्वितीय को नृत्य में भी काफी रुचि थी । राज दरबार की नृत्य कलाकार बिबेनबाई को वे काफी पसंद करते थे । बाद में बिबेनबाई को महाराजा के जनानखाने की सदस्य बनायी गयी । नवरात्रि में राजस्थान और उत्तरप्रदेश के भागों में जैसा नृत्य करते है उसी शैली का नृत्य बिबेनबाई करती थी। आज उस प्रकार के नृत्य को कत्थक नृत्य के नाम से जानते हैं । जिस तरह गायन के आधुनिक प्रकार "ख्याल" और "ठुमरि" को सयाजीराव द्वितीय के दरबार में आश्रय प्राप्त हुआ, वैसे ही श्रृंगारिक नृत्य शैली कत्थक को भी महाराजा ने अपने दरबार में प्रोत्साहित किया और एक नई नृत्य शैली कत्थक का भविष्य सुरक्षित किया।"[११]

सयाजीराव द्वितीय के बाद महाराजा गणपतराव गायकवाड़ (१८४८-१८५६) के शासन काल में भी सरोदवादक, सितारवादक, सारंगीवादक, दशावतारी कर्नाटकी नाटककार, सारमंडळवाले, भाँड इत्यादि २२ कलाकारों को कलावंत कारखाने में नियुक्त किया गया था। उन्होंने कलाकारों को मिलने वाली

धन–राशि में काफी कटौती की और कलावन्त कारखाने के वार्षिक बजेट में भी कटौति की थी, जिसका विशेष कारण जाना नही जा सका ।"[१२]

महाराजा खंडेराव (१८५६–१८७०) को भी उनके पिता के समान संगीत और नृत्य से काफी लगाव था । लोककला तथा शास्त्रीय यांनी उच्च कोटि के गायन–नृत्य को उनका प्रोत्साहन मिला । बड़ौदा राज्य के मकरपुरा के जंगल के बीच उन्होंने एक महल बनवाया था । इस महल में वे शिकार करने के बाद थकान मिटाने के लिए आराम करते थे, और संगीत एवं नृत्य द्वारा अपना मनोरंजन करते थे । कहा जाता है कि मनोरंजन के लिए लावणी, पोवाडा गानेवाले तथा तमाशा करने वाले कलाकार अक्सर आया करते थे, और अपनी कला का प्रदर्शन करते थे । उसके बदले में उनको अच्छे–अच्छे उपहार भी मिलते थे । सन् १८५७ के संग्राम के बाद खाते में होनेवाले खर्च पर अंकुश लगाने के हेतु कलाकारों की संख्या में कटौती की गई थी।"[१३]

खंडेराव महाराज के समय में ही मौलाबक्ष को बड़ौदा राज्य के राज गायक के पद पर नियुक्त किया गया था । साथ में संगीतकार नासरखाँ पखावजी को भी बड़ौदा में आमंत्रित किया गया था । दोनों ही कलाकार अपनी कला में पारंगत थे । प्रारंभ में मौलाबक्ष बड़ौदा में बहुत कम समय तक रहे, पर बाद में सयाजीराव तृतीय के कार्यकाल में हंमेशा के लिए से बड़ौदा में ही स्थायी हुए । इन दोनों कलाकारों से पहले ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक फैजमहंमदखान (भास्करबुवा बखलेके गुरु) और बीनकार एवं सितारवादक घसीटखान, इन दों संगीतकारों को भी बड़ौदा में राज्याश्रय मिला । दुसरे सयाजीराव के कार्यकाल में जो कलावन्त कारखाने कि शुरुआत हुई थी, उसको खंडेराव के कार्यकाल में काफि बढ़ावा मिला। महाराजा खंडेराव को नृत्य से विशेष लगाव था, उस समय की दों नृत्यांगनाएँ जबेनबाई और सक्वारबाई का प्रभाव महाराजा पर विशेष था । ऐसा कहा जाता है कि सक्वारबाई गजब की सुन्दर नृत्यांगना थी। महाराजा उस

पर न्योछावर थे। इन दो नृत्यांगनाओं को खंडेराव महाराज ने अपने निजि जनानखाने में स्थान दिया था, इससे मालूम होता है कि गायकों, वादकों के साथ-साथ नृत्यांगनाओं को भी बड़ौदा में समान रुप से प्रोत्साहित किया जाता था।

खंडेराव के अनुज, महाराजा मल्हारराव (१८७०-१९७५) महाराजा के समय मे भी कलावंत विभाग का काफि विकास हुआ, अपने अल्प कार्यकाल में उन्होंने शास्त्रीय तथा प्रादेशिक गुजराती, मराठी भाषी गायन और नृत्य कला को काफी प्रोत्साहन दिया था । महाराजा खंडेराव के मुकाबले कलावंत कारखाने के बजट में भी काफी वृद्धि कर उसे अधिक समृद्ध करने का प्रयत्न किये गये थे । श्रीमंत कै. खंडेराव महाराज के समय तक कलावंत कारखाना गवई खाता, वादक खाता, नृत्य खाता इत्यादी विभिन्न खातों में बँटा हुआ था । कारखाने में नियुक्त कलाकारों को वेतन-खर्च भिन्न-भिन्न खातों में से दिया जाता था एवं खातों की देखरेख के लिए किसी अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जाती थी । खातों से संबंधित निर्णय स्वंय महाराजा अथवा उनके रिश्तेदारों द्वारा लिया जाता था । मल्हारराव के समय में सभी कलावंतों के विभिन्न खातों को एक ही खाते में समाविष्ट कर लिया गया । इस खाते की देखभाल के लिए एक कारकुन की नियुक्ति की गई जिसे "खानगी कामदार" या "खानगी कारभारी" कहा जाता था । इस प्रकार कलावंत कारखाने को स्वतंत्र रुप प्रदान करने में मल्हारराव का बड़ा योगदान रहा ।"[१४]

सन् १८७४ में मल्हारराव ने मौलाबक्ष को पुनः आमंत्रित कर उन्हें कलावन्त कारखाने की देखरेख की पुरी जिम्मेदारी सौपी गई थी, ताकि उसे ठीक तरह से चलाया जा सके । मल्हारराव के समय में नवरात्रि उत्सव के समय मांडवी विस्तार मे स्थित नजरबाग पैलेस, में सुल्तानपूरा में रहनेवाली नागर संप्रदाय की इच्छा गौरी के गरबे का आयोजन किया जाता था । इच्छा गौरी जो

बहुत सुन्दर और आकर्षक गरबा गायीका थी; जो अपने गरबा गायन के लिए समस्त गुजरात में प्रसिद्‌ध थी । उसकी मृत्यु के बाद भी लोग गरबा गायन के प्रारंभ में अथवा अंत में उसका नाम जोड़कर इच्छा गौरी को सम्मान प्रदान करते थे । इच्छा के बाद उसकी दोनों कन्याएँ मणी और माणेक ने भी इच्छा गौरी की गरबा गायन की परंपरा को यथावत कार्यरत रखा था।"[१५]

१.३ सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय के शासन काल में संगीत का उत्थान एवं उसकी विकास गाथा

सन् १८७५ में महाराजा मल्हारराव को अंग्रेजों द्वारा पदच्युत किया गया। मल्हारराव के बाद गायकवाड परिवार में पुत्र का जन्म न होने के कारण बड़ौदा का शासन पुनः अंग्रेजो के हाथों मे आ गया, खंडेराव के मृत्यु के समय महाराणी गर्भवती थी और उन्होंने एक पुत्री को जन्म दिया था किन्तु उस समय के उपनिवेशी कानुन के अनुसार एक लडकी राज्य कि उत्तराधिकारी नही बन सकती थी । किन्तु सन् १८५७ की क्रांन्ति में खंडेराव गायकवाड. ने अंग्रेजों कि सैनिकों तथा आर्थिक रुप से काफी मदत की थी । खंडेराव गायकवाड द्वारा अंग्रेजों को दी गई सेवाओं के फलस्वरुप महारानी विक्टोरीया ने महारानी जमनाबाई को दत्तक पुत्र लेने कि अनुमति दी । मल्हारराव के बाद महाराजा खंडेराव कि विधवा पत्नी जमना बाई ने गोपाल राव के नाम से पहचाने जानेवाले एक १३ वर्ष के प्रतिभावान बालक को गोद लिया। गोपाल राव राजवी परिवार के दूर के रिश्तेदार थे। । गोपालराव ने अपना बचपन कावलाना नामक गाँव जिला खानदेश, महाराष्ट्र में व्यतीत किया था । वे अपने माता-पिता के साथ गाँव में खेती किया करते थे । बड़ौदा राज सिंहासन के उत्तराधिकारी गोपालराव का राज्य के ऐश्वर्य, कानुन-कायदे, रीति रिवाजों इत्यादि से उनका दूर तक कोई सबंध नही था । इस तरह गोपाल राव को बड़ौदा लाया गया और उनका नाम सयाजीराव तृतीय रखा गया । उन्हें शासकीय रीति-रिवाज सीखाए जाने लगे ।

ग्रामीण परिवेश के कारण वे शिक्षा एवं संगीत से परिचित नहीं थे । महारानी जमनाबाई की कड़ी देखरेख में उन्हें राजकीय शिक्षा, भाषाएँ, शस्त्र विद्या इत्यादि का ज्ञान दिया गया । जल्द ही सयाजीराव जमनाबाई के संगीत के प्रति लगाव तथा निष्ठा के संपर्क में आए और उनकी भी संगीत के प्रति रुची बढती गई ।

सन् १८८१ में उन्हें शासक के पद के लिए उपयुक्त पाया गया और बड़ौदा का शासक नियुक्त किया गया । अपने पूर्वज राजा-महाराजाओं की कड़ी महेनत के फल स्वरुप बड़ौदा की गणना एक धनाढ्य राज्य के रुप में होने लगी थी । राज्य को अच्छी तरह से चलाने के लिए सयाजीराव के सामने कोई आर्थिक मुश्किलें नहीं थी । उल्लेखनिय है कि उनके पूर्व के शासक खंडेराव ने तो सोने-चाँदी के तोपों का निर्माण करवाया था तथा उनके शयन कक्ष में सोने-चाँदी की पलंग हुआ करते थे । गालीचों (कॉलिनों) में मोती जडे हुए होते थे । कबूतरों की शादियाँ भी बड़े धूमधाम से की जाती थी । २० वीं शताब्दी के शुरुआत के वर्षों में दुनिया के आठवें धनाढय व्यक्ति के रुप मे सयाजीराव तृतीय की गणना की जाति थी।"[१६]

सयाजीराव तृतीय एक अलग किस्म के इंसान थे । अपने कार्यकाल के अंतिम दिनो में; वे एक प्रगतिशील और समृद्ध शासक की छबिवाले व्यक्ति के रुप में जाने जाते थे । सयाजीराव महिलाओं की शिक्षा तथा कला के पक्षधर थे । बड़ौदा को शिक्षीत एवं आधुनिक बनाने की दिशा में उनका बड़ा महत्वपूर्ण योगदान था । उनका दरबार कलाकारों को रोजगार देने के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था । जब सयाजीराव सिंहासना रुढ़ हऐ उस समय बड़ौदा राज्य आदर्श राज्य की दिशा में आगे बढ. रहा था । दरबारीयों का रहन-सहन, अनुशासन एवं प्रशासन आला दर्जे का था । इनमें संगीतकार भी शामिल थे और इन्ही में से एक थे मौलाबक्ष घीसेखान पठान (१८३३-१८९६) सयाजीराव गायकवाड़ और मौलाबक्ष घीसेखान, जिन्होनें १९ वीं सदी की आधुनिक संस्कृति का खुले रुप से

स्वीकार किया । सयाजीराव ने सुदृढ़ शासन और मौलाबक्ष ने संगीत शिक्षा की नींव डाली । सयाजीराव और मौलाबक्ष दोनों ने ही संगीत को परंपरागत ढाँचे से बाहर निकालकर संगीत और उसकी शिक्षा को आधुनिक बनाने का प्रयास किया और वह काफी सफल भी रहा। लोकसंगीत, शास्त्रीय संगीत, पाश्चात्य संगीत इत्यादि सभी प्रकार के संगीत एवं नृत्यों को सयाजीराव के दरबार में बिना किसी भेदभाव के आश्रय मिला ।

बड़ौदा राज्य को समृद्ध, शिक्षित तथा अनुशासित बनाने का श्रेय उस वक्त के दीवान सर टी.माधवराव को भी दिया जाता है । अंग्रेजों के प्रतिनिधि के रुप में उनकी नियुक्ति बड़ौदा में कि गई थी। वे शिक्षित ब्राह्मण थे, उन्हे छह भाषाओं पर अधिकार प्राप्त था एवं अंग्रेजों के पसंदीदा भी थे । मल्हारराव के सन् १८७५ में पदच्युत होने के बाद दीवान माधवराव ने ही बड़ौदा की बागडोर को अच्छी तरह से सँभाला था । बड़ौदा से पूर्व त्रावणकोर और इन्दौर में भी दीवान के रुप में वे अपनी सेवाए प्रदान कर चुके थे । ऐसे अनुभवी एवं विद्वान सर टी. माधवराव ने बड़ौदा को आधुनिक एवं समृद्ध बनाने के लिए काफी परिश्रम किया था। इसे इतिहास कतई भूल नहीं सकता । उन्होंने न्याय व्यवस्था, शासकीय सेवाएँ, पुलिस दल, अस्पताल तथा स्कूलों का निर्माण करवाया । उन्होंने कर को कम करके एक सन्तुलित बजट बनाया था । सर टी. माधवराव ने अपने अन्तिम कार्यकाल (सन् १८८१) में बड़ौदा को एक समृद्ध राज्य के रुप में छोड़ा था तथा राज्य के खजाने में आठ लाख नगद, तथा १३ लाख का निवेशित पैसा उपलब्ध करवाया था ।

उच्च प्रशासन के साथ-साथ सर माधवराव ने कला तथा संगीत के क्षेत्र में भी अपना अविस्मरणीय योगदान दिया था । दरबार में मनोरजंन करनेवाले गायक-वादक-नर्तक, पहलवान, माईम, नाटयकला इत्यादि खातों की आर्थिक एवं आश्रय देने वाली सभी महत्वपूर्ण बातों की देखभाल करने के कार्य को सर

माधवराव ने भलिभाति निभाया । देखभाल करने वाले विभाग को "खानगी कारभारी "कहा जाता था ।"[१७]

१.३.१ कलावन्त खाते को समृद्ध बनाने की दिशा में महाराजा सयाजीराव के प्रयत्न

सन् १८८१ में सयाजीराव द्वारा अधिकृत तौर पर शासन सँभालते ही, उन्हें कलावन्त कारखाने में कई खामियाँ दृष्टिगोचर हुईं । उनके पूर्व गायकवाड़ शासकों ने "कलावन्त कारखाने" को सँजोए तो रखा था, किन्तु उसमें नियुक्त किये जाने वाले कलाकारों की नियुक्ति, वेतन, अवकाश इत्यादि से संबंधित कोई ठोस नियम नहीं बनाये गये थे । उल्लेखनिय है कि सन् १८१७, आनंदराव गायकवाड़ के शासन में खर्च के हिसाब किताब की कोई व्यवस्था नही थी।

सयाजीराव तृतीय के शासन के शुरु के दिनों में "खानगी कारभारी" अत्यंत दयनीय परिस्थिति में था । कलावन्त कारखाने को दुरुस्त करने की आवश्यक्ता थी । कलावन्त खाते को आधुनिक और सृदृढ़ बनाने की दिशा में महाराजा ने कई नियम बनाये। कलावन्त कारखाने में मनोरंजनार्थ संगीत, नृत्य, नाटय्, जादुगर, कुश्तीबाज, पहलवान, मूक अभिनय, विदूषक जैसे कलावन्तों कि नियुक्ति की जाती थी । परन्तु उसमें भी संगीत कि स्थिति अच्छी नहीं थी। मनोरंजन के लिए संगीत को अभी भी मुख्य कला नहीं माना जाता था । नृत्य और नाट्य के शौकीन महाराजाओं ने संगीत को केवल दरबार कि शोभा बढ़ाने हेतु सँजोए रखा था ।

कलावन्त कारखाने में कई दशकों से चली आ रही इस अव्यवस्था एवं असमानता को दूर करना और उसकी गरिमा का ध्यान रखना महाराजा की महत्वकांक्षा थी । इस कार्य के लिए सन् १८८१ में महाराजा ने उस्ताद मौलाबक्ष को आमंत्रित किया और उन्हे कलावन्त कारखाने के अधिक्षक के सर्वोच्च पद पर

नियुक्त किया ।"[१८] मौलाबक्ष की बहुमुखी प्रतिभा से महाराजा स्वयं बहुत प्रभावित हुऐ थे । मौलाबक्ष सन् १८७० से १८७५ के कार्यकाल में बड़ौदा में अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान कर चुके थे । वे शिक्षित, सदाचारी एवं प्रशासनिक कार्यो से भी वे भलीभाँति अवगत थे । सयाजीराव कि छत्रछाया में मौलाबक्ष ने कलावन्त कारखाने को सुव्यवस्थित करने कि दिशा में कई सराहनीय कार्य किए और कलावन्त कारखाने को सृदढ करने हेतु कई नियमों का गठन किया गया। मौलाबक्ष की सलाह एवं महाराजा के प्रोत्साहन स्वरुप सन् १८८१ से अगले १८ वर्षो तक सभी नियमो आदेशों को संग्रहीत करके सन् १८९९ में एक पुस्तक प्रकाशित की गई जिसका शिर्षक था "कलावन्त खात्यांचे नियम"। कलाकारों के जीवन से संबधित सभी जानकारीयाँ, उनके वेतन, पोशाक, वे अवकाश पर कब जा सकते थे तथा उनकी प्रस्तुति क्या हो तथा कैसी हो इत्यादि के संदर्भ में नियम बनाए गये थे । ये नियम हमें बताते हैं कि उस वक्त बड़ौदा में कलाकारों की क्या स्थिति थी । उनके रोजगार की क्या दशा थी तथा उनसे क्या अपेक्षाएँ रखी जाती थी ।"[१९]

मौलाबक्ष और महाराजा ने कलावन्त कारखाने की पुरानी निष्क्रिय पड़ी व्यवस्था को सशक्त केन्द्रिय शासनगत बनाकर सुरक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। "कलावन्त कारखान्याचे नियम" पुस्तक में गठित किये गये नियमो को निम्न प्रकार से संक्षेप में समझेंगे ।

१.३.२ कलाकारों की नियुक्ति संबंधित नियम

सयाजीराव तृतिय से पूर्व शासन काल में "कलावंत कारखाना" में नियुक्त होनेवाले कलाकारों की योग्यता को जाँचने हेतु कोई विशेष व्यवस्था, नियम नही थे । नृत्य और नाटकों के शौकीन महाराजाओं द्वारा विद्वान गायकों-वादकों की अनदेखी की जाति थी । उनसे कम योग्यता प्राप्त कलाकारों को अधिक मान व सुविधाएँ प्रदान की जाति थीं । महाराजा सयाजीराव ने कलावंत कारखाने में चलने वाली इस अव्यवस्था और भेदभाव की निती को संपूर्ण रुप से नाबूद करने के लिए कई ठोस नियमों का गठन किया, जिसका सख्ती से पालन करना हर एक कलाकार के लिए आवश्यक समझा गया ।

सन् १८९९ में "कलावंत खात्यांचे नियम" नामक पुस्तक प्रकाशित किया गया, जिसमें कलावंत खाते में नियुक्त कलाकारों के लिए नियत किये गये नियमों की जानकारी प्राप्त होती है । सन् १८८३-१८८४ तक "कलावंत कारखाना", फैजदार खाता (पोलीस डिपा़र्टमेन्ट) के अर्न्तगत कार्यरत था । सन् १९०० में फौजदार खाते से हटाकर "कलावंत कारखाने" को एक स्वंतत्र विभाग के रुप में स्थापित कर दिया गया । सन् १८८९-१९०० में मौलाबक्ष के पुत्र डॉ. अल्लाउद्दीन खान पठान को इस खाते के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त करके उसकी संपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई ।"[२०]

"कलावंत कारखाने" को सुव्यवस्थित और आधुनिक बनाने की दिशा में नियमोनुसार कलाकारों की नियुक्ति कि जाने लगी । नये नियमानुसार कलाकारों को नौकरी के लिए आवेदन करना पड़ता था । अपनी उपलब्धियाँ, शहर, उम्र, इत्यादि की लिखीत रुप से जानकारी प्रदान करनी पड़ती थी । गायन-वादन-नर्तकों के लिए विषयानुरूप शास्त्रीय एवं क्रियात्मक पक्षों से सबंधित लिखित-मौखिक परीक्षा ली जाती थी । उन्हें मालूम रागों की संख्या, उनकी बंन्दिशों के

बारे में पूछा जाता था । किसी भी राग एवं रचनाओं कि पुनरावृत्ति नहीं होगी, ऐसा लिखकर देना पड़ता था ।

पुरुष कलाकारों के लिए बड़ौदा की देशी भाषाएँ मराठी, गुजराती एवं हिन्दी भाषाओं कि लिखित एवं मौखिक जानकारी होना आवश्यक समझा गया था । कलाकार को किसी भी प्रकार का व्यसन न हो इसकी इसकी पूरी जाँच-पड़ताल ली जाती थी ।

महिला कलाकारों की नियुक्ति के लिए इतनी जटिल परिक्षा नहीं ली जाती थी । महिलाओं को केवल यह बताना जरुरी था की क्या वे मराठी, गुजराती, हिन्दी, व्रज, उर्दु इत्यादि भाषाओं में गायन की क्षमता रखती है या नहीं ? उनके हाव-भाव एवं कंठ के माधुर्य के प्रति विशेष ध्यान दिया जाता था ।

कलाकारों की नियुक्ति के लिए वय मर्यादा भी निश्चित कि गई थी, जिसके अनुसार १५ वर्ष से अधिक और ३० वर्ष से कम उम्र के कलाकारों की नियुक्ति की जाती थी ।

सयाजीराव तृतिय के पुर्व महाराजाओं के कार्यकाल में एक बार नियुक्त कलाकार को उसके अनुभव के आधार पर बढ़ती मिलती थी । किन्तु अब इन नियमों में बदलाव करके यह तय किया गया कि हर एक नियुक्त कलाकार की चार वर्ष में एक बार परीक्षा ली जाए और उसीके आधार पर उन्हें बढ़ती देना व न देना यह तय किया जाए ।"[२१]

१.३.३ कलाकारों का वर्गीकरण

सयाजीराव तृतिय के शासनकाल में कलावंत कारखाने में नियुक्त गुणीजनों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्‌धि हो रही थी । गायक, वादक, नर्तक इत्यादि को मिलाकर लगभग १५० गुणीजन कलावंत कारखाने में अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान कर रहे थे । इतनी अधिक संख्या में कलाकार होने की वजह से उनकी प्रतिभा एवं आवश्यकतानुसार वर्गीकरण करना आवश्यक समझा गया था । नियुक्त कलाकारों को चार वर्गो में बाँटकर उनके कार्य-प्रणाली अनुसार समय पत्रक बनाया गया था ।

प्रथम वर्ग में खाते के अधीक्षक को रखा गया था। जिसका कार्य कलाकारों के वेतन, बढती, निवृत्ति एवं उनकी दिनचर्या पर ध्यान रखना हुआ करता था । खाते में होने वाले खर्च एवं आय का भी ध्यान रखा जाता था । दरबार में एवं शहर में होने वाले हर एक सांगीतिक प्रस्तुतियों का सुचारु रुप से संचालन की जिम्मेदारी अधीक्षक की रहती थी ।"[२२]

दूसरे वर्ग में शहनाई-सुंदरी, संभल जैसे वाद्य बजानेवाले होलार और गुरव वाजंत्री को रखा गया था । उन्हें प्रतिदिन सूर्यास्त के समय इंदुमती महल के प्रांगण में अपनी सांगीतिक प्रस्तुति प्रदान करनी पडती थी । महल में और स्थानिक प्रमुख देवालयों में होने वाले शुभ अवसर, पुज़ा, हिन्दूओं के धार्मीक त्योहारों इत्यादी अवसर पर शहनाई, सुंदरी, बांसरी, संबळ, स्वरपेटी इत्यादी वाद्यों के साथ अपनी सेवाएँ प्रदान करनी पड़ती थी ।

तीसरे वर्ग में महिला गायक-नृत्यांगना, तांजोर नृत्यमंडली, मूक अभिनय के कलाकार, तबला वादक, सारंगी वादक और तानपुरा वादकों का समावेश किया गया था । इन कलाकारों को आवश्यकतानुसार अपनी सेवाएँ प्रदान करनी पड़ती थी । ख्याति प्राप्त कलाकार उस्ताद अब्दुल करीम खान और आफताब-ए-

मौसिकी उस्ताद फैय्याज खान का समावेश भी इसी वर्ग में किया गया था । इस वर्ग में महिला कलाकारों को छोड़कर अन्य सभी छोटे-बडे कलाकारों को हर सुबह खाते के अधीक्षक के पास हाज़िरी पत्रक में लिखित रुप से अपनी हाजरी लगानी पड़ती थी । अपनी प्रस्तुती के लिए वे पूरी तरह से तैयार है या नहीं उसकी पूर्व जानकारी अधिक्षक को देनी पडती थी ।

पखावज वादक, हार्मोनियम वादक, सितार वादक, सरोद वादक एवं अन्य वीणा वादकों को चौथे वर्ग में रखा गया था । इन वादकों से एकल वादन के साथ-साथ गायन एवं नृत्य के साथ संगतकार के रुप में भी अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान करनी पडती थी ।"[२३]

१.३.४ अवकाश एवं समय सुचकता सबंधित नियम

सयाजीराव तृतिय पुर्व के शासन में नियुक्त कालाकार बीना इजाजत छुट्टी लेकर चले जाते थे । वेतन लेकर कई महीनों और सालों तक अपनी सांगीतिक सेवाएँ दिये बिना भाग जाते थे । किन्तु अब कलाकारों को छुट्टी पर जाने के लिए आवेदन पत्र देना पड़ता था, मंजुरी मिलने पर ही वे छुट्टी पर जा सकते थे । कुछ गायकों तथा नृत्यांगनाओं को शहर एवं पड़ोसी गावों में शादी इत्यादि प्रसंगों पर कला प्रस्तुती के लिए आमंत्रण मिलता था। किन्तु बीना इजाजत वे कहीं नहीं जा सकते थे। राज्य के नियमानुसार सशर्त छुट्टी लेकर उन्हें जाना पड़ता था । वरिष्ठ दरबारी कलाकार फैज महम्मद खान को भी यात्रा करने के लिए इन नियमों का पालन करना पड़ता था । अवकाश के लिए दी गई समयावधि से देर पर आने वाले कलाकारों के वेतन से पैसे काटकर उन्हें दंडित किया जाता था । अधिक विलंब होने पर कलाकार की नियुक्ति को बरखास्त करके, उनके स्थान पर अन्य कलाकार की नियुक्ति की जाती थी । सन् १९०२ में सयाजीराव ने अवकाश से संबंधित नियमों में थोड़ी उदारता दिखाई थी, जिसके अनुसार अब कलाकार

अपनी कला को अधिक बहेतर बनाने एवं अग्रिम शिक्षा लेने हेतु आसानी से छुट्टी पर जा सकता था । वर्ष में एक बार अवकाश लेकर अपने गाँव अथवा रिश्तेदारों के घर पर जाने की इजाजत दी जाने लगी । महाराजा बड़ौदा शहर के बाहर होने पर ही कलाकारों को इन छुट्टी यों का लाभ मिल सकता था । सन् १९०४ में बनाये गए नये नियमानुसार अब कलाकार को अपनी आय की अतिरीक्त वृदि्ध हेतु दरबार से बाहर किन्तु केवल बड़ौदा शहर के भीतर ही कला प्रस्तुति के लिए छुट्टी मंजूर की जाने लगी । कलाकार को अधिक से अधिक तीन माह तक की छुट्टी मिल सकती थी । कलाकारों को राज्य के आदेशानुसार विभिन्न शहरों के श्रीमंतों, राजा रजवाड़ों में उनकें मनोरंजन हेतु भी भेजा जाता था । आदेश का पालन न करने पर उन्हें दंडित किया जाता था ।"[२४]

महाराजा समय पालन के पक्के आग्रही थे। किसी भी शासकीय एवं सार्वजनिक कार्यक्रमों में निश्चित किये गये समय पर उनका आगमन हुआ करता था । होली इत्यादि त्योहारों पर ८-१० दिनों तक रोज दो घंटे मनोरंजन लक्षी कार्यक्रमों को महाराजा एवं प्रजा के समक्ष आयोजित किये जाते थे । इन कार्यक्रमों में प्रस्तुति हेतु पसंद किये गये कलाकारों को समय पालन का ध्यान रखना पड़ता था । महाराजा के आगमन के एक घंटे पहले ही कलाकारों को उपस्थित रहकर अपना निश्चित किया गया स्थान अचूक ग्रहन करना पडता था । समारोह शुरु होने के बाद-बार वाद्यों को मिलाना और कार्यक्रम में विक्षेप पैदा करना महाराजा को बिलकुल पसंद नहीं था । कलाकारों को सुव्यवस्थित पोशाक में तैयार होकर अपने स्वर एवं ताल वाद्यों को अच्छी तरह से स्वरबद्ध करके तैयार रखना पड़ता था । महाराजा के आगमन के साथ ही कार्यक्रमों की शुरुआत की जाती थी, कार्यक्रमों की पूर्णाहुति दो घंटे के भीतर करना आवश्यक समझा जाता था ।

नाटकों के प्रयोगों में भी समय का पालन करना अति आवश्यक था । महाराजा का मानना था कि देर रात तक चलने वाले नाटकों से बेवजह जागरण होता है और लोगों का स्वास्थय बिघड़ता है । रात्रि के ठीक आठ बजते ही नाटय् गृह में महाराजा का प्रवेश होता था । उनके स्थानापन्न होते ही नाट्य गृह का परदा उपर जाता था, और ठिक रात के बारह बजे नाटक की समाप्ति की जाती थी । इन नियमों का सभी कलाकारों को सख्ती से पालन करना पड़ता था।"[२५]

१.३.५ वेतन, खर्च तथा दी जाने वाली सुविधाओं से सम्बन्धित आर्थिक नियम :

सयाजीराव तृतीय के शासन से पूर्व कलाकारों को दिये जाने वाले वेतन में भी कई असामानताएँ थीं । कलाकारों की गुणवत्ता एवं श्रम के आधार पर वेतन देने की कोई सुलभ व्यवस्था नहीं थी । महिला नृत्यांगनाओं एवं गायिकाओं को अधिक वेतन और सम्मान दिया जाता था । पुरुष गायकों को महिला कलाकारों की तुलना में कम वेतन दिया जाता था । उनकी योग्यता एवं गुणवत्ता की अनदेखी की जाती थी । स्थायी और प्रासंगिक कर्मचारियों को अधिक से अधिक ७००/- तथा कम से कम ५०/- मानदेय दिया जाता था ।"[२६]

राज्य में नियुक्त सरदारों ने महिला कलाकारों को अपनी परिचायिका के रुप में घर में संरक्षण दे रखा था । महिला कलाकारों पर शासन की अधिक कृपा दृष्टि रहती थी । उन्हें अधिक वेतन, बड़े-बड़े उपहार एवं सुविधाएँ दी जाती थीं। मूक अभिनय के कलाकारों को ७००/- नाटक मण्डली को ४७५/-, महिला गायिका और नृत्यांगनाओं को २२५/- मानदेय दिया जाता था । परन्तु पुरुष गायक-वादक कलाकारों की अवहेलना की जाती थी । उन्हें महिला कलाकारों से करीब आधी १५०/- की राशि वेतन के रुप में प्राप्त होती थी ।"[२७]

सयाजीराव ने सत्ता सँभालते ही पुराने तथा गैरहिसाबी खातों को सही दिशा में लाने का कार्य किया । नियुक्त मंत्रियो को कलावन्त खाते को

सुव्यवस्थित करने का आदेश दिया । समान काम समान वेतन देने की दिशा में विचारणा होने लगी । महिलाओं को दी जानेवाली विशेष सुविधा, उपहार, फिजूलखर्ची पर रोक लगाकर पैसा बचाने की दिशा में कार्य किया जाने लगा । महाराजा ने सन् १९२४ से कलावन्त कारखाने के व्यवस्थापन में होनेवाले खर्च को घटाकर ३०,००० तक कर दिया, उल्लेखनीय है कि यह राशि सन् १८४३ में कलावंत खाते पर किये जाने वाले खर्च से भी कम थी ।"[२८]

सन् १८६७ में मल्हार गायकवाड़ ने आदेश दिया था कि स्त्री गायिका अंबा कोटवालीन को घर बनाने के लिए २०००/- की धन राशि दी जाए । किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि यह धन राशि उपहार के रुप में दी गई है या कर्ज के रुप में । सयाजीराव ने उस धनराशि को भेंट के रुप में माना। किन्तु इस तरह की घटना की अपने शासन काल में पुनरावृत्ति नहीं होने दी । नर्तकियों को आभूषण वस्त्र खरीदने के लिए अलग से धनराशि दी जाती थी, किन्तु केवल कर्ज के रुप में उसे सरल किश्तों में उनके वेतन से काट लिया जाता था । अधिकतर समय शहर से बाहर होने के बावजूद हिसाब का छोटे-से-छोटे पक्ष भी महाराजा को डाक द्वारा भेजा जाता था ।"[२९]

जब सन् १८८८ में खानगी कर्मचारी प्रेस्तोन्जी दोराबजी ने सुझाव दिया कि संगीत का स्तर बढ़ाया जाना चाहिए । स्तरहीन तथा निकम्में कलाकारों को बाहर किया जाए और कलाकार की गुणवत्ता एवं श्रम के आधार पर वेतन तय किया जाए, जिसके लिए एक समिति को रचना की जाए, जो इस सुझाव पर विचार एवं अध्ययन करे और वेतन से संबंधित असमानताओं को दूर करके सार्वजनिक नियम गठित करे । सुझाव पर अमल करते हुए संगीत के हर एक कलाकार को १००/- की धनराशि वेतन के रुप में निश्चित की गई । कलाकार कितना भी बड़ा या छोटा हो, उसके वेतन में कोई असमानता नहीं की जाती थी ।"[३०] उदाहरण स्वरुप सन् १८९० में पटियाला के तीन गायक गुलाम हुसैन

खान, करीम हुसैन खान और रमजान अली खान को दरबार में १००/- के वेतन पर नियुक्त किया गया था । सन् १९१३ में अर्थात् दो दशकों के बाद नियुक्त प्रसिद्ध कलाकार आफताब-ए-मौसिकी उस्ताद फैयाझखान को भी पटियाला के उपरोपक्त तीन गायकों के भाँति १००/- का ही वेतन दिया जाता था । यदि फैयाझखान के वेतन में ५/- की वृद्धि की गई तो, बाकी के सभी कम प्रचलित कलाकारों के वेतन में भी वृद्धि की जाती थी ।"[३१]

नाटकों के शौकीन सयाजीराव ने नाटक मण्डलियों के वेतन से संबंधित नियम भी तय किये थे; और नाटकों की गुणवत्ता के आधार पर उन्हे वेतन दिया जाता था । नाटकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया था ।

पहला यह कि जिन नाटकों का मंचन सुचारु एवं व्यवस्थित रुप से किया गया हो, उन्हें प्रथम कक्षा में रखा जाता था । जो नाटक महाराजा को पसंद नहीं आते थे, उन्हें दूसरी श्रेणी में रखा जाता था । महाराजा यदी नाटकों को रंगभूमि में जाकर देखें, तो मंडली को खर्च के साथ ३००/- दिए जाते थे । और यदि इसी नाटक को वे अपने दरबार में देखते थे, तो नाटक मण्डली को ४००/- तक की राशि दी जाती थी । नाटक की प्रस्तुति अच्छी नहीं हुई तो उसे दुसरी कक्षा में रखा जाता था और मण्डली को २००/- की धन राशि दी जाती थी ।"[३२]

नाटक की प्रस्तुति के बाद नाटक मण्डली को महाराजा की राय लेना आवश्यक होता था । उनकी प्रस्तुति को किस श्रेणी में रखा गया है, यह जानना पड़ता था। नाटक कि गुणवत्ता के आधार पर श्रेणी तय करके उन्हे वेतन दिया जाता था। वेतन एवं ईनाम बिना किसी भेद-भाव के दिए जाते थे ।

५५ की उम्र में कर्मचारियों को निवृत्त किया जाता था । निवृत्त होने वाले प्रत्येक कलाकार को नियमानुसार निवृत्ति वेतन और निवृत्ति पारितोषिक से सम्मानित किया जाता था ।"[३३] एक प्रसंगानुसार तबलावादक इलाहीबक्श जो

अत्यंत वृद्ध हो चले थे और अपनी प्रस्तुति को न्याय नहीं दे पा रहे थे । उन्हें निर्धारित वेतन के रुप में जो ३०/- मिलते थे, निवृत्ति के बाद अब उन्हें १५/- रुपये निवृत्ति वेतन के रुप में मिलने लगे, जिससे राज्य कि १५/-की बचत हो गई और एक वृद्ध कलाकार को जीवन निर्वाह के लिए १५/- की धन राशि उपलब्ध होने लगी; और उनकी जगह दूसरे तबलावादक की नियुक्ति की गई थी ।

कभी-कभी कलाकारों को प्रस्तुति के कई सप्ताहों के बाद भी वेतन नहीं मिलता था । उन्हें उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी या उसे भूल जाना पड़ता था । कलाकारों को दिये जानेवाले वेतन के विलंब के प्रति महाराजा ने अपनी नाराजगी जताई थी और उसको गंभीरता से लेते हुए उन्होंने अपने कार्यकाल में ऐसा आदेश दिया था कि कलाकारों को न केवल वेतन, बल्कि भेट, निवृत्ति वेतन तथा उनके निवास स्थान से संबधित सभी सुविधाएँ बिना किसी विलंब के तुरंत प्राप्त हों । कलाकार की मृत्यु या फरार हो जाने पर उसके निवास स्थान को तुरंत किसी जरुरतमंद कलाकार को दिया जाता था ।”[३४]

अतिरिक्त व्यय, फिजूल खर्ची, अयोग्य कलाकारों को दी जाने वाली सुविधाओं तथा नये कलाकारों के वेतन इत्यादि से बचत करके राज्य का राजस्व बढ़ाया गया था । महाराजा के आदेश को नियम के रुप मे प्रस्थापित करना पड़ता था । कठोर अनुशासन के बावजूद सयाजीराव कलाकारों को अपने विकास के लिए आर्थिक रुप से भी मदद करते थे । वे कलाकारों के नये एवं प्रयोगात्मक विचारों का भी स्वागत करते थे; तथा उन्हें हर संभव सहयोग दिया जाता था ।

उदाहरण स्वरुप मौलाबक्ष ने सन् १८८६ में संगीत की एक गायनशाला खोलने का प्रस्ताव महाराजा के समक्ष रखा । संगीतशिक्षा का एक सार्वजनिक संकुल हो, जिसमें बिना किसी भेदभाव के अभिजात शुद्ध संगीत सामूहिक शिक्षा

पद्धति के अनुसार सिखाया जाए । मौलाबक्ष की इस भावना का स्वागत करते हुए महाराजा ने उन्हें गायनशाला स्थापित करने की मंजूरी दे दी। इसके साथ ही उन्हें अलग से वेतन, नियत कक्ष, शिक्षक, वाद्य जैसी सुविधाएँ भी राज्य की ओर से दी गईं । साथ-साथ मौलाबक्ष के सामने यह शर्त भी रखी गई कि यदि गायनशाला खोलने का यह प्रयोग सफल न रहा और छ माह के भीतर कोई संतोषकारक परिणाम न मिला, तो उसे बंद किया जाएगा । संगीताभ्यास के लिए पुस्तकों के निर्माण के लिए मौलाबक्ष को २,२००/- तक की धन राशि भी उपलब्ध कराई गई थी ।

अन्य दरबारी कलाकार फैज महम्मद खान को भी सयाजीराव ने अपनी संगीत शाला चलाने के लिए प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहाय प्रदान की थी; परंन्तु मौलाबक्ष की तुलना में इस संगीत शाला की प्रगति संतोषजनक न होने से उसे बन्द कर दिया गया । कलाकारों को उदार मन से दी जानेवाली सहायता के साथ-साथ उत्कृष्ट परिणाम की अपेक्षा महाराजा को अवश्य रहती थी । योग्य परिणाम न मिलने पर आर्थिक सहाय को बंद कर दिया जाता था और कलाकार के वेतन से नुकसान की भरपाई की जाती थी ।

सन् १८९५ में बीबीजान नामक एक गायिका से सयाजीराव गायकवाड़ बहुत प्रभावित हुए थे । सयाजीराव ने उन्हें संगीत सिखने के लिए फैज महम्मद खान के पास भेज दिया था, जो कि दरबार के एक प्रतिष्ठित एंव आदरणीय दरबारी संगीतज्ञ थे । उन दिनों महिला संगीतकार तथा नृत्यांगनाओं को वेश्या का दर्जा दिया जाता था। ऐसी महिलाओं को तालिम देना उस्ताद व पंडित लोग अपना अपमान मानते थे । फिर भी राजा के आदेश को ध्यान में रखते हुए बीबीजान को सख्त अनुशासन में तालिम देने का कार्य शुरु किया गया, इस शर्त के साथ कि अगर १ वर्ष में उसमें किसी प्रकार की प्रगति नही पाई गई, तो उन्हे

८०/- प्रति माह मिलने वाला वेतन बंद करके उसे नौकरी से निकाल दिया जाएगा ।

बीबीजान को अपने ही खर्चें से दो सारंगी वादक तथा एक तबला वादक को रखना पड़ा था । रियाज के लिए मकरपुरा पॅलेस या अन्य किसी भी जगह जाने का खर्चा भी बीबीजान को उठाना पड़ता था । जबकि उस समय के गायकों को मोटरकार या हाथी की सवारी भी उपलब्ध थी । बालकृष्ण बुआ इच्छल करंजीकर ने अपने संस्मरण में कहा था कि उस समय बड़ौदा में दरबारी गायक पालकी या हाथी पर बैठकर दरबार में आते थे । जबकि ऐसी सुविधा सिर्फ राजकीय परिवार को ही प्राप्त थी । जब सयाजीराव गर्मियों में मकरपुरा महल में जाते थे, तो कलाकारों से भी वहाँ जाकर प्रदर्शन करने की अपेक्षा रखी जाती थी । परिवहन के लिए वे बैलगाडी का उपयोग करते थे । अगर महाराजा बड़ौदा में होते तो कलाकारों को अपने घर से दरबार आनेजाने का खर्च राज्य वहन करता था । सन् १८९७ में एक वीणा कलाकार मंगमाबाई को जुर्माना किया गया था; क्योंकि उसने अपने परिवहन खर्चे से वाहन न लेकर सरकारी गाड़ी का इस्तमाल किया था। गायक अब्दुल करीम खान बड़ौदा में सन् १८९४ से १८९९ तक रहे। उन्होंने घोड़े का ही इस्तमाल किया था । घोड़े भी राज्य की तरफ से मिल सकते थे, किन्तु केवल कर्ज के रुप में । दो अवसरों पर जब फैय्याज खान को महाराजा मैसूर के पास सन् १९३० और सन् १९३८ में भेजा गया था तब रेल्वे स्टेशन तक आने-जाने की सुविधा मैसूर राज्य की तरफ से प्रदान की गई थी । किन्तु, बड़ौदा में उन्हें घोडा गाड़ी किराये पर लेनी पड़ती थी । बाद में वे अपनी कार इस्तमाल करने लगे ।"[३५]

शहनाई वादक गणपतराव वसईकर को महाराजा ने संगीत की अग्रिम तालीम के लिए भिंडी बाजार घराने के उस्ताद अमान अली खान के पास भेजा था और उसका पूरा खर्च राज्य की ओर से दिया गया था । मौलाबक्ष के द्वितीय

पुत्र अल्लाउद्दीन खान पठान को भी महाराजा ने पाश्चात्य् संगीत शिक्षा के लिए लंडन स्थित "रॉयल म्युजिक एकेडमी" में भेजा था । उसके लिए उन्हें राज्य कि ओर से छात्रवृत्ति प्रदान की गई थी ।

हर एक कलाकार को महाराजा के आदेशों का सख्ती से पालन करना होता था । साल के अधिकांश महीने महाराजा विदेश में ही रहा करते थे । वहाँ के आधुनिक विचार, शिक्षा व्यवस्था, स्थापत्य, महिला शिक्षा इत्यादि से महाराजा काफी प्रभावित हुए थे; और उसी तरह की आधुनिक व्यवस्था अपने राज्य में भी स्थापित हो, इस दिशा में वे हमेशा अग्रेसर रहते थे ।

विदेशों में जिस तरह भोजन इत्यादि समारोहों में संगीत की प्रस्तुतियाँ होती थीं ठीक वैसा ही प्रयोग महाराजा ने बड़ौदा में किया था । आमंत्रित विदेशी मेहमानों के साथ रात्रि भोजन समारोह में महाराजा ने उस्ताद फैय्याज खान को गायन प्रस्तुति के लिए आदेश दिया था । भोजन समारोह में परदे के पीछे फैय्याज खान ने अपनी कला प्रस्तुत की थी।"[३६] कभी-कभी सरकारी अस्पतालों में भी सांगीतिक बॅन्ड की प्रस्तुतियाँ रखी जाती थी, ताकि निराश एवं हताश ऐसे मरीजों को भी राहत की साँस लेने का अवसर प्राप्त हो सके।"[३७] "संगीत चिकित्सा" का शायद यह पहला प्रयोग भारत में किया गया था, जिससे महाराजा के दूरंदेशी और प्रगतिशील विचारों के दर्शन होते हैं । कभी-कभी महाराजा गायकों से बैठकर नहीं, बल्कि विदेशी पद्धति के अनुसार खड़े होकर गाने का भी आग्रह करते थे । महाराजा खुद पियानो सीखने-बजाने का शौक रखते थे । भारतीय संगीत को समझने की भी भरपूर कोशिश करते थे । उस्ताद अब्दुल करीम खान को भी अन्य दरबारी कलाकारों की भाँति महाराजा के सभी आदेशों का पालन करना पडता था । मौलाबक्ष की गायनशाला में संगीत शिक्षक के रुप में उस्ताद अब्दुल करीम खान को कार्य करना पड़ता था तथा राजघराने की महिलाओं को भी संगीत शिक्षा देनी पड़ती थी । छोटे-बड़े, सिद्ध-असिद्ध, स्त्री-

पुरुष सभी को बिना किसी भेदभाव के महाराजा के आदेशों का पालन करना पड़ता था । महाराजा ने कला, संगीत, साहित्य तथा नौकर शाही के साथ-साथ पश्चिम के उपनिवेशी संस्कारों को भी अपनाया था । और यही कारण रहा होगा कि बड़ौदा राज्य देश के अन्य राज्यों के मुकाबले अधिक विकसित हुआ था।

१.३.६ प्रजावत्सल महाराजा सयाजीराव द्वारा संगीत शिक्षा तथा प्रजा के मनोरंजनार्थ सांगीतिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन

सन् १९१६ में बड़ौदा में प्रथम अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का आयोजन पं. वि. ना. भातखंड़े की अध्यक्षता में किया गया था। भारतीय शास्त्रीय संगीत को भारतीय समाज में पुनः प्रस्थापित करना और जन मानस को इस अभिजात संगीत को सीखने समझने के लिए प्रेरित करना सयाजीराव की अभिलाषा थी । हम सभी इस बात से विदित हैं कि बड़ौदा में आयोजित इस संगीत परिषद से भारतीय संगीत में एक नई क्रांति का जन्म हुआ था । भारत के विभिन्न प्रदेशो से कई गायक, वादक शास्त्रकारों इत्यादि को इस संगीत परिषद में आमंत्रित किया गया था । आमंत्रित कलाकारों को किसी भी प्रकार की असुविधा न हो, इस तरह की उच्च व्यवस्था राज्य द्वारा की गई थी ।

संगीत परिषद के उद्घाटन प्रसंग पर महाराजा ने अपने भाषण में अपने मनोभावों को खुले मन से प्रकट किया था । भाषण में प्रजा के प्रति उनकी संवेदना एवं प्रजा प्रेम स्पष्ट रुप से दृष्टिगत हो रहा था ।

महाराजा ने भाषण में कहा था कि भले ही वे अपना अधिकतर समय यूरोप में व्यतीत करते हों; किन्तु हर समय उन्हें प्रजा की चिंता सताती रहती है । उन्होंने कहा था कि यूरोप की और अपने राज्य की भौगोलिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ बिलकुल भिन्न हैं । युरोप की खुशनुमा आबोहवा, आर्थिक परिस्थिति तथा सुख-सुविधाएँ हमसे बेहतर हैं । वहाँ के संगीत की स्थिति भी हमसे बेहतर

है । जबकी यहाँ के उष्ण वातावरण में रहनेवाली गरीब प्रजा के ज्ञान एवम् मनोरंजन हेतु संगीत शिक्षा और उसके प्रस्तुतीकरण को सार्वजनिक करने की दिशा में महाराजा ने अपने अंतिम श्वास तक सराहनीय कार्य किया ।

महाराजा के कार्यकाल में भारतीय शास्त्रीय संगीत, पाश्चात्य संगीत, लोक संगीत इत्यादि सभी प्रकार के संगीत की शिक्षा, उसके आस्वाद एवं मनोरंजन का लाभ प्रजा को आसानी से प्राप्त हो ऐसी सुविधाएँ विकसित करने कि दिशा में प्रयास शुरु किये गए थे । महाराजा का मानना था कि भारतीय संगीत एक दैवी कला है । संगीत के सेवन से हमारे मन का मनोरंजन होता है, जिससे मन को संजीवनी प्राप्त होने का अहेसास होता है । संगीत जीवन का आनंद है । अतः हमारी प्राचीन इस पितृकला को सँभालना हमारा धर्म है ।"[३८]

राज्य की प्रजा को अपनी विश्रांति के समय, या शुभ अवसरों, त्योहारों इत्यादि पर आसानी से एवं बिना किसी खर्च के मनोरंजन प्राप्त हो सके, इस उद्देश्य से महाराजा ने दरबार की चार दिवारों में बँधी हुई संगीत कला को प्रजा की सेवा में अर्पित कर दिया था । कलावन्त कारखाने के हर एक कलाकार को प्रजा के मनोरंजनार्थ सेवा के लिए अग्रेसर रहने का फरमान जारी किया गया था।

कलावंत कारखाने के हर एक कलाकार को प्रजासेवा के लिए हमेशा तत्पर रहना पड़ता था । सार्वजनिक स्थलों पर मनोरंजन के विविध संगीतलक्षी कार्यक्रम होते थे । बड़ौदा के दो प्रमुख उद्यानो में सायंकाल को संगीत की प्रस्तुति होती थी । ज्युबिली बाग में हर मंगलवार और पुर्णिमा के दिन और सयाजीबाग में हर शनिवार-रविवार को सांगीतिक बैन्ड की प्रस्तुति होती थी । सन् १८७९ में सांगीतिक प्रस्तुति हेतु सयाजी उद्यान के बीचोबीच एक बैन्डस्टैन्ड भी बनाया गया था, जहाँ पर नियमित रुप से कई सांगीतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था ।"[३९]

इस बैन्ड की कुछ विशेषताएँ होती थीं । शास्त्रीय संगीत आम लोगों को हमेशा रुचिकर लगे, ऐसा जरुरी नहीं; लेकिन इन बैन्डों से परोसा जानेवाला संगीत हल्का-फुल्का सा प्रायः हर इंसान को पसंद आए ऐसा होता था । प्रसंगों के अनरुप होता था । उस जमाने में रेडियो का आगमन भी विशेष नहीं हुआ था । इसीलिए संगीत में रुचि रखने वाले "कानसेन" अचुक इन उद्यानों में हाजिर रहते थे। उद्यानों की शुद्ध एवं प्रसन्न हवा और उसमें संगीत का आस्वाद के स्वरुप प्रजा के आरोग्य में होने वाले सकारात्मक परिणाम और मनोरंजन, महाराजा की यह अद्भुत संकल्पना सही अर्थों में सराहनीय थी।

गौरी व्रत, दिवाली, मोहर्रम इत्यादि त्योहारों के लिए बैन्ड की प्रस्तुति का दिन बदला जाता था । इसका पूर्वविधि समय पत्रक तैयार किया जाता था । शहर के कई बड़े मंदिरों में सांगीतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था । मंदिरों में नरसिंह जी मंदिर, श्री सिद्धनाथ मंदिर, श्री दत्तमंदिर, श्री नीलकंठेश्वर मंदिर, श्री राम मंदिर, श्री चित्तेनाथ मारुति मंदिर, श्री कावडी बुवा का मंदिर, बहुचराजी मंदिर इत्यादि अनेक धार्मिक संस्थानों में भजन, किर्तन, शास्त्रीय संगीत इत्यादि का आयोजन किया जाता था ।"[४०]

अनेक उत्सवों, समारोहों में कई दिनों तक संगीत के कार्यक्रम होते रहते थे । ये कार्यक्रम महाराजा के दरबार मे और शहर में प्रजा के बीच भी आयोजित किये जाते थे। महाराजा का जन्म दिवस और होली के त्योहार पर संगीत के बड़े-बड़े जलसे होते थे । ये समारोह आठ-आठ दिनों तक चलते थे । पूना, बम्बई, कोल्हापुर इत्यादि जगहों से कलाकारों को कला प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया जाता था । गायन-वादन-नृत्य, अभिनय, खेल, जादूगरी इत्यादि के कलाकारों की परीक्षा ली जाती थी, परीक्षा में उतीर्ण होने पर ही इन गुणी कलाकारों को इस उत्सव में अपने कला प्रदर्शन की मंजूरी दी जाती थी । आठ से दस दिन रोज रात को दो घंटे यह समारोह होता था, जिसमें राज्य की प्रजा

को भी आमंत्रित किया जाता था । हर क्षेत्र के कलाकारों को प्रदर्शन के लिए मंच प्राप्त हो और प्रजा को भरपूर मनोरंजन प्राप्त हो, यह इसका मुख्य हेतु रखा गया था । नगरवासी अपनी दिनचर्या को कम करके इन समारोहों में संगीत का आनंद लेने बड़े हर्ष के साथ सहभागी होते थे । हर वर्ष इन समारोह का लोग इंतजार करते थे । लोगों के लिए यह पर्व एक त्योहार से कम नहीं होता था । बाहर से आए कलाकारों को अच्छी राशि तथा उपहारों के साथ बिदा किया जाता था । इन समारोहों में अपनी कलाप्रस्तुति देना कलाकार अपना सौभाग्य समझता था ।

कीर्ति मंदिर में हर गुरुवार को गायन-वादन के कार्यक्रम होते थे। कार्यक्रम की शुरुआत गणपतराव वसईकर एवं उनके शिष्यों के शहनाई वादन से की जाती थी । हर गुरुवार को नियमित दो घंटे प्रजा के समक्ष चलने वाले इस शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में कलावंत कारखाने के गायक उस्ताद फैयाज खान, निसार हुसैन खान, अताहुसैन खान इत्यादि नामी उस्तादों की सांगीतिक प्रस्तुति होती थी। ये कार्यक्रम निःशुल्क होते थे, ताकि हर व्यक्ति इसका भरपूर आनंद उठा सके ।"[४१]

बड़ौदा के लहरीपुरा दरवाजा, मांडवी दरवाजा, पाणीगेट दरवाजा, पत्थर दरवाजा, लक्ष्मीविलास पैलेस के मुख्य द्वार, प्रतिष्ठित बड़े मंदिरों के नगारखानों में प्रतिदिन सुबह-शाम थोड़ी देर के लिए शहनाई वादन का नियमित कार्यक्रम होता था । हम कल्पना कर सकते हैं कि उन दिनों बड़ौदा का सांगीतिक वातावरण कितना सुनहरा एवम् पवित्र होता होगा ।"[४२]

रमजान, तुलसी विवाह, दत्त जयंती, बकरी ईद की सवारी, ताबूत की स्थापना से विसर्जन तक रोज वादन तथा ताबूत के सामने मजलिस में गायन के जलसे होते थे । वसंत पचंमी, महाशिवरात्रि, विजयादशमी, गणेश चतुर्थी,

गुड़ीपाड़वा, जन्माष्टमी त्यौहारों में संगीत के कार्यक्रम होते थे । ऐसे त्योहारों के अवसर पर कलावन्त कारखाने के कलाकार अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रस्तुत करते थे ।"[४३]

श्री लिंबजादेवी उत्सव हो या श्री पार्श्वनाथ पर्यूषण, बोलाई देवी की शोभायात्रा हो या अन्य प्रसंग, किसी भी धर्म या जाति के भेद-भाव के बगैर इस कला संरजाम का लाभ प्रजा को मिलता रहे ऐसी व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती थी । आम प्रजा के घरों में होनेवाले शुभ प्रसंग जैसे विवाह, जन्मोत्सव आदि प्रसंगों पर भी बैन्ड आदि की व्यवस्था की जाती थी ।

जहाँ तक लोक संगीत तथा लोकनृत्य का प्रश्न है, गरबा लोक नृत्य ने अपनी लोकप्रियता भूतकाल से बनाए रखी है । गुजराती प्रजा के लिए नवरात्र में नौ दिनों के लिए गरबा का आयोजन किया जाता था । गरबे गाने के लिए खास गायिका-वाद्यकारों को आमंत्रित किया जाता था । नियुक्त समिति द्वारा इन कलाकारों की योग्यता की जाँच करके उन्हें गरबा गायन के लिए नियुक्त किया जाता था ।"[४४]

शहर के प्रतिष्ठीत एवम् शिक्षित नागरिक ऐसे दीवान मनुभाई मेहता के आश्रय एवं प्रोत्साहन स्वरुप नवरात्रि में नागर जाति की महिलाएँ जो बड़ौदा सुल्तानपुरा मोहल्ले की रहने वाली थी जिसमें प्रमुख रुप से सुमन्त मेहता, शारदा बेन मेहता, विद्याबेन मेहता और हंसाबेन मेहता (महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय कि प्रथम उपकुलपति) आदि के गरबा आयोजित किये जाते थे । पारंपरिक गरबा गायन तथा लोकनृत्य में इन महिलाओं का योगदान अविस्मरणीय है । उस काल में गरबा नृत्य अलग प्रकार से किया जाता था । एक महिला हारमोनियम के साथ गायन करती थी तथा दूसरी महिलाएँ गरबा नृत्य के साथ-साथ सहगायन भी किया करती थी, तथा लय बनाये रखने के लिए केवल ताली

या चपटीयों का ही प्रयोग किया जात था। तबले अथवा ढोलक का इस्तेमाल नहीं होता था ।

मराठी प्रजा के मनोरंजन हेतु शहरों के मुख्य स्थान, जैसे कि कोठी, न्याय मंदिर, मांडवी, दाँड़िया बजार इत्यादि जगहों पर "तमाशे" का आयोजन किया जाता था।"[४५]

महाराजा के समय में पारंपारिक लोकनृत्यों तथा लोकसंगीत को भी संरक्षण प्राप्त था । इस तरह भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ आधुनिक पाश्चात्य संगीत प्रकारों को महाराजा के समय में भी प्रोत्साहन मिला और उनके कलाकारों को राज्याश्रय मिला । महाराजा के समय में मनोरंजन के लिए केवल, शुद्‌ध, आध्यात्मिक एवं परंपरागत संगीत को ही प्रोत्साहन मिलता था । वीभत्स एवं अश्लील संगीत को कोई स्थान नहीं था । इसीलिए १ जानेवारी सन् १९१९ में मराठी तमाशा को उसके अश्लीलता के कारण प्रतिबन्धित कर दिया गया था।"[४६]

मुस्लिम बंधुओं के लिए भी कव्वाली के कार्यक्रम भी शहर में आयोजित किये जाते थे । कालू कव्वाल उस समय के प्रसिद्‌ध कव्वाली गायक थे । धर्मनिरपेक्ष महाराजा द्वारा मुस्लिम, मराठी तथा गुजराती इत्यादि धर्मसंप्रदायों के मनोरंजन का ध्यान रखा जाता था ।

बालगन्धर्व ने सन् १९१३ में गंधर्व नाटक मंडली की शुरुआत की थी । महाराजा मराठी होने कि वजह से नाटक मंड़ली में गाए जाने वाले राग, भाषा एवं अभिनय से काफी परिचित थे । किन्तु बड़ौदा के लोग इस सांगीतिक-अभिनय मिश्रित संगीत प्रकार से लगभग अपरिचित थे । महाराजा ने स्वस्थ मनोरंजन के प्रचार-प्रसार के लिए गान्धर्व मंडली की ही शाखा किर्लोस्कर मण्डली को बड़ौदा में आश्रय दिया था । नाट्‌यसंगीत में यहाँ के लोगों ने काफी रुचि दिखाई थी,

जिससे कम समय में ही काफी नाटक मंडलियाँ बड़ौदा में आने लगीं और मशहूर हो गईं । गंधर्व नाटक मंडली, ब्रम्हा यूनियन क्लब इत्यादि नाटक मंडलियों का बड़ौदा में काफी नाम था और कई बार तो दिन में तीन से चार बार उनके प्रयोग शहर में होते थे।

१.३.७ गायनशाला के उत्थान हेतु महाराजा के प्रयत्न

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने सन् १८८६ में मौलाबक्ष की अध्यक्षता में गायनशाला की स्थापना की गई थी । गायनशाला को सभी प्रकार की सुविधाएँ राज्य की ओर से प्रदान की गई थीं । "कलावन्त खाते" के गुणी कलाकारों की ही इस गायनशाला में संगीत शिक्षक के रुप में नियुक्ति की गई थी । मौलाबक्ष की देखरेख में यह विद्यालय काफी सम्पन्न हुआ और उसकी कई शाखाएँ अन्य शहरों में भी खोली गईं ।

सन् १८९६ में मौलाबक्ष के स्वर्गवास के बाद इस गायन शाला का संचालन मौलाबक्ष के ज्येष्ठ पुत्र मुर्तजाखान पठाण को सौंपा गया । मौलाबक्ष के द्वितीय पुत्र अल्लाउद्दीन खान पठान एवं नाती इनायत खान भी इस संगीत शाला में अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे ।

सन् १८८६ में शुरू की गई यह गायनशाला मुर्तजाखान पठाण की अध्यक्षता में अच्छा कार्य कर रही थी । मौलाबक्ष द्वारा आविष्कार की गई स्वरलिपि में अभ्यास के लिए पुस्तकों का निर्माण भी किया गया था । लगातार ३०-३५ वर्षों तक इस गायनशाला ने सामान्य लोगों के बीच संगीत को पहुँचाया और लोगों की संगीत के प्रति अभिरुचि पैदा करने का कार्य भली-भाँति किया । किन्तु सन् १९१० के आसपास इस गायनशाला को सँभालने वाला मौलाबक्ष का बहुतायत परिवार, नेपाल नरेश के आमंत्रण पर नेपाल जाकर बस गया । जिसके कारण गायनशाला को व्यवस्थित एवं अनुशासित रुप से चलाने का कार्य

अनुभवहीन शिक्षकों के पास में चला   गया । गायनशाला की शिक्षा-पद्धति की गुणवत्ता में कमी नजर आने लगी थी । संगीत के प्रति लोगों की अभिरुचि फिर से कम होने लगी थी । सन् १९१६ के अखिल भारतीय संगीत परिषद् में महाराजा ने इस संदर्भ में अपनी व्यथा को अपने भाषण में प्रकट किया था । महाराजा ने अपने भाषण में इस बात का दु:ख व्यक्त किया था कि संगीत के ज्ञानवर्धन के लिए सन् १८८६ में खोली गई इस गायनशाला की उद्देश्य पुर्ति में काफी विलंब हो रहा है । गायनशाला से गुणवत्ता युक्त कलाकारों की उत्पति न के बराबर है ।

सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएँ एवं आर्थिक मदद के बावजूद इस गायनशाला में संगीत सिखने के प्रति लोगो में उदासीनता स्पष्ट रुप से दिखाई दे रही है । नियुक्त शिक्षक अपनी कला को ईमानदारी से विद्यार्थीओं को नहीं सीखा रहे हैं । एक तरफ लोगों की संगीत के प्रति उदासीनता तथा दूसरी ओर शिक्षकों की शिक्षा प्रदान करने की दिशा में संकुचिता के कारण युवाओं में संगीत की जिज्ञासा कम हो रही है एवं प्राप्त, योग्य संधिका पूर्ण लाभ लेना विद्यार्थीयों के लिये काफी मुश्किल हो रहा है ।

गायनशाला की बिगड़ती हुई स्थिति को सुधारने की दिशा में महाराजा ने दृढ़ संकल्प किया और आशा प्रकट की कि अन्य विद्याओं की तरह संगीत-शिक्षा को भी समाज में अवश्य स्थान मिलेगा और उसके लिए हर संभव मदद राज्य शासन की ओर से की जाएगी, ऐसा वचन दिया । गायनशाला के उत्थान में महाराजा द्वारा किये गये प्रयत्नों को संक्षिप्त में विवरण निम्नप्रकार से है ।

सन् १९१४ में मुर्तजाखान के निवृत्त होने के बाद सरकारी कर्मचारी सीताराम आठवले ने सन् १९१४ से सन् १९१८ तक स्कूल का कार्यभार सँभाला था । उन्हें अपनी नौकरी के अतिरिक्त गायन शाला का कार्यभार

सँभालना पड़ता था ।सरकारी कार्य का दबाव अधिक होने के कारण उन्हें संगीत विद्यालय के प्राचार्य पद से इस्तीफा देना पड़ा था ।इसके बाद संगीत विद्यालय रावपुरा से स्थानांतरित होकर दाँड़िया बाजार स्थित बैन्ड़ स्कूल में सम्मिलित हो गया, जिसके प्रभारी एक रुसी संगीतज्ञ मिस्टर फ्रेडलिक्स थे, जो कि बैन्ड के संचालक के रुप में भी अपनी सेवाएँ दे रहे थे । सन् १९१९ में मिस्टर फ्रेडलिक्स को गायनशाला के प्राचार्य के पद पर नियुक्त किया गया । मिस्टर फ्रेडलिक्स को भारतीय संगीत की जानकारी नहीं थी । फिर भी उन्होंने गायनशाला के संचालन की चुनौती को स्वीकार किया ।उस समय उन्होंने एक नया विचार महाराजा की सम्मति से प्रतिपादित किया कि गायनशाला में विद्यार्थीयों की पूर्ण उपस्थिति के लिए उन्हें प्रोत्साहन स्वरुप छात्रवृत्ति दी जाए। जिन विद्यार्थीयों की प्रतिमाह २० दिनों की उपस्थिति होती थी, उन्हें ४/- रुपये की छात्रवृत्ति दी जाने लगी ।छात्रवृत्ति की यह योजना उस वक्त बहुत प्रचलित हुई और उसे अच्छा प्रतिसाद मिला । विद्यार्थीयों की संख्या बढ़ाने एवं उन्हें नियमित करने की दृष्टिकोण से यह विचार काफी कारगार साबित हुआ ।

दक्षिण भारतीय संगीत के प्रति उदासीनता को दूर करने के लिए मिस्टर फ्रेडलिक्स ने सन् १९२२ में महाराजा की अनुमति प्राप्त करके कलावन्त खाता के कलाकारों को गायनशाला में शिक्षक के पद पर शिक्षण कार्य करना अनिवार्य कर दिया था। उनके वेतन में थोडी सी वृद्धि करके दक्षिण भारतीय संगीत शिक्षा निर्देशों को उत्तर भारतीय संगीत में बदलने का कार्य सौंप दिया था, जिसके वे ज्ञाता थे । मौलाबक्ष द्वारा लिखित एवं प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों में उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय संगीत पद्धतियों के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास हुआ था ।इन परिस्थियों में दक्षिण भारतीय संगीत को प्रस्थापित करने कि दिशा में मिस्टर फ्रेडलिक्स के यह विचार काफी सराहनीय थे ।किन्तु मौलाबक्ष और उनके परिवार के सदस्यों की अनुपस्थिति में इन पाठ्य ग्रंथों की उपेक्षा की

गई थी । कलावन्त कारखाने के अधिकतर संगीतज्ञ अशिक्षित होने के कारण मौलाबक्ष द्वारा जो पुस्तकीकरण किया गया, वह ज्यादा उपयोगी सिद्‌ध नहीं हुआ । उन संगीत शिक्षकों ने महसूस किया कि पुस्तक में दिया गया ज्ञान बहुत ही आरंभिक स्तर का था ।

सामाजिक दायरों के कारण शायद अभीतक विद्यालय में कोई नृत्य की कक्षा नहीं थी । मि. फ्रेडलिक्स २६-६-१९२७ को सेवानिवृत्त होने के बाद उस्ताद फैय्याज खान को संगीत विद्यालय का कार्यभार सोंपा गया । उल्लेखनीय है कि इसी संगीत विद्यालय में सन् १९२२ से उस्ताद फैय्याज खान ने संगीत शिक्षक के रुप अपनी सांगीतिक सेवाएँ देना प्रारंभ किया था । खान साहब एक उच्चकोटि के कलाकार थे, परंतु प्रशासनिक कार्यों में उन्हें विशेष रुचि नहीं थी । इस वजह से विद्यालय में कर्मचारियों, शिक्षकों तथा छात्रों में भी अनुशासन का पालन नहीं होता था ।"[४७]

सन् १९२८ में शिक्षा मंत्री नरेन्द्रनाथ केदारनाथ दीक्षित को यह कार्य सौंपा गया कि वे स्कूल के लिए प्राचार्य की शोध करें । स्कूल की प्रतिष्ठा के अनुकुल, संगीत के अनुदेशों को व्यवस्थित लागू कर सके और स्कुल की लोकप्रियता बढ़ा सके, ऐसे योग्य व्यक्ति को स्कूल के प्राचार्य पद पर नियुक्त करने को प्राथमिकता देना आवश्यक समझा गया । उस समय संगीतकार, शास्त्रकार पं. विष्णुनारायण भातखंडे को काफी सम्मान से देखा जाता था । गायनशाला की बिगड़ती हुई स्थिति को सुधारने के लिए महाराजा ने सन् १९२८ में भातखंडे जी को बड़ौदा में आमंत्रित किया । उन्हें रेल की द्वितीय श्रेणी की टिकिट की सुविधा भी प्रदान की गई । वे करीब एक सप्ताह बड़ौदा में रहे और गायनशाला की कार्य-प्रणाली एवं शिक्षाव्यवस्था पर चिंतन करके विद्यालय में हो रही अनुचित बातों को लिखित रुप में महाराजा के समक्ष रखा । भातखंडे जी के सलाह के अनुसार गायन शाला का प्रशासनिक एवं शिक्षण से संबंधित कार्यों को

सुव्यवस्थित रुप से सँभाल सके, ऐसे गुणी एवं शिक्षित व्यक्ति का गायनशाला के प्राचार्य के रुप में नियुक्त करना आवश्यक समझा गया ।"[४८] अतः इस पद के लिए समस्त भारत से आवेदन पत्र आमंत्रित किये गए। इस पद के लिए सात आवेदकों ने आवेदन पत्र भेजे, जिसमें से कुछ मुख्य आवेदक थे, जैसे कि पं. ओमकारनाथ ठाकुर, उस्ताद फैय्याज खान, हीरजीभाई पातरावाला, शांतिनिकेतन से विश्वेश्वर शास्त्री, सीताराम आठवले तथा अन्य दो ।

उपर्युक्त आवेदकों की सूचि दीवान सर वी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा महाराजा के समक्ष प्रस्तुत की गई ।गायनशाला के पुनरुत्थान के लिए उपयुक्त व्यक्ति की प्राचार्य के पद पर नियुक्ती करना अत्यंत कठिन कार्य था । इस कार्य के लिए महाराजा ने पं. भातखंडे जी से विचारविमर्श करने के बाद सन् १ अगस्त १९२८ में श्री हीरजी भाई आर. डॉक्टर को प्राचार्य के पद पर नियुक्त किया ।इसके अतिरिक्त हीरजी भाई को कलावंत कारखाने की देखरेख की भी जिम्मेदारी सौंपी गई ।"[४९] महाराजा श्री हीरजी भाई तथा उनके परिवार को व्यक्तिगत रुप से जानते थे ।हीरजी भाई के दादाजी श्री अदराजी डॉक्टर महाराजा खंडेराव तथा मल्हारराव व सयाजीराव के व्यक्तिगत चिकित्सक रहे थे । महाराजा खंडेराव द्वारा उनका सम्मान किया गया था तथा उन्हें सवारी हेतु पालकी का विशेषाधिकार और रसूलपुरा नामक गाँव इनाम में दिया गया था । हीरजी भाई डॉक्टर ऐसे व्यक्ति थे, जिनका पूरा परिवार इस शाही खानदान से जुड़ा हुआ था ।हीरजी भाई का संगीत से लगाव तथा निस्वार्थ जनसेवा करने की भावना से महाराजा काफी प्रभावित हुए थे । हीरजी भाई डॉक्टर की कुशलता दिलरुबा बजाने में थी, जिसे उन्होंने स्व. उस्ताद जमालुद्दीन खान से सीखा था, जो बड़ौदा दरबार के बीनकार थे । उन्हीं से उन्होंने विचित्र वीणा बजाने की तकनीक भी सीखी थी । भारत के प्रखर संगीतज्ञ एवं शास्त्रकार पं. विष्णुनारायण भातखंडे जी से भी उन्होंने संगीत और शास्त्र का ज्ञान अर्जित

किया । पं. भातखंडे वर्ष में एक बार महारानी चिमनाबाई साहब द्वितिय को संगीत शिक्षा देने हेतु बड़ौदा में आया करते थे । महारानी चिमनाबाई वीणा भी बजाती थीं । वीणावादन की शिक्षा उन्होंने उस्ताद जमालुद्दीन खान बीनकार से प्राप्त की थी । वही वीणा महाराजा फतेसिंह म्युजियम के पास मोतीबाग पैलेस में रखी हुई थी, जिसे अब फॅक्लटी आर्फ़ परर्फोमींग आर्टस् के म्युझियम में स्नांनतरित किया गया है। आज भी लक्ष्मीविलास पैलेस में एक कमरा है, जिसे "वीणा" के नाम से जाना जाता है ।

महाराजा इस बात से पूरी तरह से आश्वस्त थे कि हीरजीभाई एक उपयुक्त व्यक्ति है; जो अपने कार्य व स्कूल के प्रति जिम्मेदार रहेंगे और स्कूल की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्रस्थापित करेंगे । महाराजा यह भी जानते थे कि हीरजीभाई चूँकि बड़ौदा के निवासी हैं; अतः वे यहाँ के रीतिरिवाज, संस्कृति से भली-भाँति अवगत हैं, जो शिक्षक तथा छात्रों के बीच का सामंजस्य बनाए रखने में सहायक सिद्ध होगा ।

हीरजीभाई ने जब गायनशाला के प्राचार्य का पद सँभाला, उस वक्त विद्यार्थीयों की संख्या केवल २५ थी; और उनके शिक्षण का कोई निश्चित अभ्यासक्रम नहीं था । महाराजा द्वारा जो अभूत पूर्व विश्वास हीरजी भाई डॉक्टर में दर्शाया गया, ठीक उसके अनुरुप कार्य करते हुए हीरजी भाई ने सन् १९२८ से १९५० तक गायनशाला को सँम्भाला और उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्रस्थापित किया । इस दरम्यान उन्होने कलावंत कारखाने के उत्तर दायित्व को भी भली-भाँति निभाया ।

संगीत विद्यालय का कार्यभार सँभालने के बाद हीरजी भाई ने शिक्षकों के प्रशिक्षण पर अपना ध्यान केंद्रित किया, जिससे उनका ज्ञानवर्धन किया जा सके । उन्होंने विद्यालय में पं. भातखंडे जी की पुस्तकों का चलन शुरु किया । भातखंडे

जी द्वारा आविष्कार की गई स्वरलिपि एवं पुस्तकों में दी गई संगीत की प्रायोगिक एवं शास्त्रोक्त जानकारी से शिक्षकों तथा विद्यार्थीयों को अवगत कराया गया । प्रशिक्षण एवं निरीक्षण का कार्य वे स्वयं करते थे । जब तक शिक्षकों और विद्यार्थीयों को सोंपे गये अपेक्षित कार्य से वे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हो जाते थे, तब तक अपने कठोर अनुशासन द्वारा उन नियमों का पालन करवाने के लिए कटिबद्ध रहते थे । हीरजीभाई के प्रयत्न स्वरुप विद्यालय ने धीरे-धीरे अपनी खोई हुई प्रसिद्धि हांसिल कर ली, परिणाम स्वरुप स्त्री और पुरुष विद्यार्थीयों की संख्या में अविरत अभिवृद्धि होने लगी ।

विद्यालय क्रमांक १ रावपुरा, जब बैन्ड स्कूल में स्थानांतरित हुआ, तब वह बैन्ड स्कूल की शाखा के रुप में जाना जाता था । सन् १९२९ में हीरजी भाई ने विद्यालय को गोविंदराव मध्यवर्ती शाला में स्थानांतरित किया और इसके बाद सन् १९३६ से यह गायन शाला, संगीत विद्यालय (म्युजिक कॉलेज) के नाम से पहचाना जाने लगा । हीरजी भाई ने ही प्रमाणपत्र आधारित ५ वर्ष का डिप्लोमा का पाठय्क्रम शुरु किया । पाठ्यक्रम की समाप्ति पर हर विद्यार्थी को कठिण परीक्षा से गुजरना पड़ता था । स्वंय हीरजीभाई द्वारा विद्यार्थीयों की परीक्षा ली जाती थी । प्रत्येक विद्यार्थीं को दो दिन में तीन घंटे के अनुसार परीक्षा देनी होती थी । उत्तीर्ण होने पर ही उन्हें डिप्लोमा का प्रमाणपत्र दिया जाता था। हीरजीभाई अत्यंत कठिन परिश्रम करने वाले अनुशासित व्यक्ति थे । इसी कारण विद्यार्थीयों के परिणाम भी अच्छे आते थे । विद्यार्थीयों और शिक्षको को मार्गदर्शन देने के लिए वे सतत अग्रेसर रहते थे । कठोर अनुशासन और विनम्रता का समन्वय ही हीरजीभाई की एक विशेष पहचान थी ।

सन् १९२८ में कलावन्त कारखाने का कार्यभार सँभालने के बाद हीरजीभाई ने महाराजा से विनती की कि वे सप्ताह में एक बार दरबारी गायकों को गायनशाला में विद्यार्थीयों के ज्ञानवर्धन के लिए उनके समक्ष कम से कम दो

घंटे की प्रस्तुति देने की सम्मति दें ।शुरु में दरबारी गायक प्रस्तुति के लिए राजी नहीं हुए; लेकिन हीरजीभाई ने अपनी व्यवहार कुशलता और बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए उन्हें मना ही लिया ।बड़ौदा दरबार के प्रचलित गायक आफताबे मौसिकी उस्ताद फैय्याज खान, रजा हुसेन खान, निसार हुसेन खान, आबेद हुसेन खान, अता हुसेन खान, फिदा हुसेन खान इत्यादि कलाकार गायनशाला में अपनी प्रस्तुति देते थे ।

गायनशाला के प्राचार्य के पद के साथ साथ शहर में होने वाले प्रत्येक सांगीतिक मनोरंजन के कार्यक्रम आयोजित करने व उसके निरीक्षण के लिए महाराजा ने डॉक्टर हीरजी भाई को नियुक्त किया था । उन्होंने कलावंत कारखाने में नियुक्त कलाकारों द्वारा एक वाद्यवृंद की रचना भी की थी ।बड़ौदा शहर में आमंत्रित कलाकारों के प्रीति-भोज तथा औपचारिक कार्यक्रमों में मनोरंजन हेतु इस वाद्यवृंद की प्रस्तुति की जाती थी, जिसका पूर्ण कार्यसंचालन हीरजी भाई द्वारा किया जाता था ।हीरजी भाई खुद इस वाद्यवृंद में वायोलिन बजाते थे ।वायोलिन वादन के प्रशिक्षण एवं उसके विकास के लिए हीरजी भाई बड़ौदा के लिए एक नई रोशनी के रुप में स्थापित हो चुके थे ।

सन् १९३४ में हीरजी भाई गायनशाला में एक कार्यक्रम आयोजित किया गया था ।इस कार्यक्रम में महाराजा को भी आमंत्रित किया गया था ।इस कार्यक्रम में दी गई प्रस्तुति से महाराजा इतने खुश हुए कि उन्होंने तुरंत ही हीरजी भाई के वेतन में बढ़ोतरी कर दी थी ।हीरजी भाई ने अपने अथक प्रयत्न से संगीत विद्यालय की दशा व दिशा ही बदल दी थी । छात्रों कि संख्यामें भी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी थी ।इस संगीत विद्यालय में से सर्वप्रथम डिप्लोमा कि उपाधि प्राप्त करनेवाले छात्रों में श्री मधुकर जोशी, श्री आर.डी.पोतदार, रजनीकांत देसाई आदि के नाम प्रमुख तौर पर लिए जाते है । इन्हीं तीन विद्यार्थीयों ने बाद में इसी विद्यालय में संगीत शिक्षक के रुप में भी अपनी सेवाएँ

प्रदान की थीं । श्री आर.डी.पोतदार ने ही महाराजा रणजीतसिंह गायकवाड़ को भी संगीत की शिक्षा दी थी । सन् १९३९ से हीरजीभाई के नेतृत्व में संगीत विद्यालय में गायन के अतिरिक्त सितार, दिलरूबा, शहनाई, तबला, होलार, वायोलीन इत्यादि वाद्यों का प्रशिक्षण भी दिया जाने लगा ।"[५०]

हीरजी भाई के लिये यह गर्व की बात थी उनके विद्यार्थी आकाशवाणी पर कार्यक्रम देने के लिए सक्षम थे । यह अनुठा विद्यालय अपनी प्रसिद्धि के चरम पर पहुँच गया । इस प्रसिद्धि के कारण हीरजी भाई को ऑल इंडिया रेडियो, न्यू दिल्ली में स्वर परीक्षण समिति का सदस्य पद मिला तथा उन्हें संगीत अकादमी का सदस्य भी निर्वाचित किया गया । हीरजी भाई को संगीत के लिये सिर्फ बड़ौदा ही नही सम्पूर्ण गुजरात भी पहचानता था । उस समय पूरे भारत में केवल हीरजी भाई ही विचित्र वीणा के उदाहरण स्वरुप प्रतिष्ठित वादक के रुप में पहचाने जाते थे । सन् १९६४, जुलाई में आपका आकाशवाणी से प्रसारित अखिल भारतीय संगीत के कार्यक्रम में विचित्र वीणा वादन की प्रस्तुति की गई थी । उस वक्त देश में विचित्र वीणा के आप एक मात्र "ए" ग्रेड के आकाशवाणी मान्यता प्राप्त कलाकार थे।"[५१]

कलावंत कारखाना एवं गायनशाला व्यवस्थित रुप से कार्यरत है कि नहीं, उसे जाँचने के लिए विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था । सन् १९३९ में लखनऊ मॅरिस संगीत विद्यालय के प्राचार्य तथा पं.भातखंडे के विद्यार्थी श्री अन्ना साहब रातंजनकर को बड़ौदा संगीत विद्यालय के निरीक्षण के लिए आमंत्रित किया गया था । उन्होंने कहा था कि बड़ौदा में दी जाने वाली संगीत की शिक्षा अत्यंत उच्च कोटी की है । उल्लेखनीय है की, सन् १९१६ में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन पं.भातखंडे जी की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था । जिसमें रातंजनकर जी ने भातखंडे जी के प्रमुख सहायक के रुप में अपना योगदान दिया था । इस संगीत सम्मेलन में उनकी प्रस्तुति को काफी सराहा

गया था । भातखंडे जी की विनती पर महाराजा सयाजीराव ने अन्ना साहेब रातंजनकर को गायन शाला में शिक्षक के पद पर नियुक्त किया था। जहाँ पर उन्होने ५ वर्षों तक अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं ।"[५२] उसी दौरान वे उस्ताद फैय्याज खान के शिष्य बने और संगीत रचयिता एवं उच्च कलाकार के रुप में ख्याति अर्जित की ।

हीरजी भाई के नेतृत्व में बड़ौदा शहर के विविध जिलों में संगीत की कक्षाएँ खोली गईं । संगीत कक्षाओं में गायन के अलावा सितार, दिलरुबा, शहनाई, तबला, ईसराज, वायोलिन जैसे वाद्यों को सिखाया जाता था । हीरजी भाई ने महाराज सयाजीराव के आदेश का पालन करते हुए "उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास" नामक पुस्तक भी लिखी थी । भातखंडे जी की प्रतिभा एवं कार्यप्रणाली से प्रभावित हीरजीभाई ने संगीत विद्यालय में भातखंडे जी के क्रमिक पुस्तकों के आधार पर शिक्षण कार्य शुरु किया ।

राज्यों के विलय के बाद यह निश्चित किया गया कि प्रसिद्ध संगीत विद्यालय को महाराजा सयाजीराव विश्व विद्यालय के साथ संलग्न कर दिया जाए। संगीत विद्यालय ने अपने नये पाठयक्रम के साथ डिग्री कोर्स भी शुरु किये जिसमें उस समय १३४ विद्यार्थीयोंने प्रवेश लिया था । हीरजी भाई की देखरेख में कलावंत कारखाने में कुछ प्रमुख नर्तकियों के नाम देना आवश्यक है ।

<u>उत्तर भारतीय नर्तक / नर्तकियाँ (कत्थक)</u>

१. छम्मु जान

२. अच्छन जान

३. गौराबाल बादकर

दक्षिण भारतीय नर्तक / नर्तकियाँ (भरत नाटयम)

१. गौराजी

२. कान्तामति

३. भानुमति

४. सरस्वती

५. रत्नमाला

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ चाहते थे कि मेरी प्रजा को हर एक प्रकार का संगीत मनोरंजन आसानी से प्राप्त हो। २३ जुलाई १९२५ को जब मुबंई में ऑल इंडिया रेडियो प्रसारण शुरु हुआ, उसके बाद सन् १९३५ में महाराजा की हीरक जयंती के अवसर पर महाराजा ने आग्रह किया था कि बड़ौदा में भी ऑल इंडिया रेडियो की शाखा स्थापित हो । उनका यह सपना सन् १९३९ में पूरा हुआ था, जब उनके पुत्र प्रतापसिंह गायकवाड़ बड़ौदा के राजा बने थे। उन्होंने बड़ौदा के राज्यों के बटवारे से कुछ समय पहले रेडीयो स्टेशन का शुभारंभ किया गया और सलाटवाड़ा में डायमंड जुबली भवन में ऑल इंडिया रेडियो की स्थापना की गई । श्रोता सन्मुख न होते हुए भी संगीत प्रस्तुति देने का कलाकारों के यह लिए एक नया अनुभव था । उस्ताद फैयाज खान और हीराबाई बड़ोदेकर जैसे गायकों की ऑल इंडिया रेडियो पर प्रस्तुति सुनने के लिए लोग बेताब रहते थे । प्रचलित-अप्रचलित सभी कलाकारों को ऑल इंडिया रेडियो के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम देने का अवसर मिलने लगा था । ऑल इंडिया रेडियो कलाकारों को प्रोत्साहित करने एवं संगीत को समाज में प्रचलित, प्रसारित करने का अच्छा मार्ग था ।

दरबार में तंजावुर पद्धति का नृत्य अथवा भरत नाटयम् नृत्यशैली बहुत प्रसिद्ध थी । महाराजा प्रतापसिंह तथा सयाजीराव के कार्यकाल में इस नृत्य शैली को काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। यह नृत्य शैली मूलरूप से मंदिरों में किये जानेवाले नृत्यों पर आधारित थी। मंदिरों में नृत्य करने वाली स्त्रियों को देवदासी के रुप में जाना जाता था, जो बादमें तंजौर और तामिलनाडु के चौला, नायक तथा मराठी शासकों के दरबार में मनोरंजन का मुख्य स्त्रोत बना, जिसके पालनकर्ता चौला तथा मराठा साम्राज्य के शासक थे । इस नृत्य शैली को आगे बढ़ाने के लिए मराठा शासक, शिवाजी महाराज के कनिष्ट भाई विकोजी महाराज भोसले के वंशजों ने सराहनीय कार्य किया था।

मराठा राज्य तंजौर को सन् १८५७ में लॉर्ड डलहौजी ने हस्तगत कर लिया था, उसका कारण मराठों मे उत्तराधीकारी का न होना था । इस नृत्य को आश्रय एवं प्रोत्साहन देने वाले शासकों का अचानक अंत हुआ । फिर भी वहाँ के मंदिरों में इस नृत्यकला को आश्रय मिला और इस तरह यह नृत्यशैली जीवित रहने में सफल हुई ।

सन् १८८० में महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ का विवाह तंजौर की महारानी चिमनाबाई I के साथ हुआ था । विवाह के तुरंत बाद महाराजा ने अपने ससुर श्रीमंत सकाराम राव मोहिते को प्रार्थना करके तंजौरी नर्तकों का एक समूह बड़ौदा बुलवा लिया । यह प्रार्थना खान साहेब मौलाबक्ष की सिफारिश पर की गई थी। अपने दक्षिण यात्रा के दौरान मौलाबक्ष इस नृत्य शैली से परिचित हुए थे । प्रार्थना को ध्यान में रखते हुए सन् १८८३ में नर्तकों का समूह बड़ौदा आ पहुँचा था । महारानी चिमनाबाई के साथ आए भरतनाटयम् नर्तकों के इस समुह में बारह वर्ष की गौरी (गोरा) और ग्यारह वर्ष की कांतिमती जैसे दो प्रतिभावान नर्तकियों का का बड़ौदा में आगमन हुआ था। गोराजी की माता कन्नुअम्मा भी

उसके साथ बड़ौदा आई थी, वे तांजौर दरबार की मुख्य नृत्यांगना थीं । उनके साथ और एक प्रतिभावान नृत्यांगना को भी आमंत्रित किया गया था, उसका नाम भानुमती था । भानुमती के कुंभकोणम् की देवदासी होने का भी उल्लेख मिलता है । भानुमती कुछ वर्ष रहने के बाद बड़ौदा छोड़कर चली गई । इस नृत्य समूह के साथ कुछ वाद्य के कलाकार भी आए थे, जिन्हें उस वक्त नट्टुवर कहा जाता था ।"[५३]

गोरा और कांतीमती अपने गुरु अप्पास्वामी के साथ घंटों नृत्य की साधना किया करते थे । दरबार में कम से कम एक घंटे की समयावधि तक प्रदर्शन की उनसे अपेक्षा रखी जाती थी । महाराजा सयाजीराव को इस नृत्यशैली के शास्त्रीय पक्ष में अधिक रुची न थी इसलिए दोनों बहनें विविध प्रसंगों, त्योहारों के अनुकूल छोटी- छोटी प्रस्तुतियाँ महाराजा के समक्ष किया करती थीं । जैसे सक्रांति के त्योहार पर पतंग उड़ाई जाती थी उसी के अनुरुप नृत्य, राधा-कृष्ण नृत्य, बिच्छू नृत्य (काजु-पककारी), मधुमत्ता नृत्य, मदारी नृत्य इत्यादि प्रस्तुतीयाँ दरबार में रात्रि भोजन के बाद दी जाती थी । तंजौर के देवालयों में होनेवाले पारंपारिक नृत्य की भी प्रस्तुति की जाती थी, जिसे बहुत अच्छा प्रतिसाद मिलता था । सन् १९१६ तक इन दोनों नृत्यांगनाओं को संयुक्त रूप से ४३३/- रू. का वेतन दिया जाता था । इन दोनों बहनों ने अपनी नृत्य शैली को बड़ौदा में अन्य महिला नृत्यांगनाओं को भी सिखाने का कार्य शुरु किया था । गोराजी की मृत्यु सन् १९५० में और कांतीमती का अवसान सन् १९५३ में हुआ था । ऐसा भी कहा जाता है कि दहेज के एक भाग के रुप में भी यह नृत्य समुह बड़ौदा आया था ।"[५४] गोराजी के उत्तराधिकारियों में एक पुत्री चंद्राबाई तथा दो पुत्र तुलसीदास तथा कुबेरनाथ ने भी बड़ौदा में अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान कीं । कुछ समय पश्चात चंद्राबाई ने नृत्य छोड. दिया जबकि तुलसीदास और उनके परिवार ने हारमोनियम मरम्मत का कार्य करना शुरु किया था । केवल कुबेरनाथ ऐसे थे,

जिन्होंने इस पारंपारिक नृत्य का व्यवसाय चालू रक्खा था । उनके गुरु नटराज कुन्दुस्वामी थे । वे भी बाद में बड़ौदा में रहकर नृत्य का प्रशिक्षण देने लगे थे । चंद्राबाई के दूसरे रिश्तेदारों में सरस्वती तथा रत्नमाला नामक नृत्यांगनाओं ने गोराजी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए दरबार में प्रस्तुतियाँ देने का कार्य जारी रक्खा । राज्यों की विलीनीकरण के बाद, भरतनाट्यम को संगीत विद्यालय में प्रशिक्षण हेतु शुरु किया गया । जिसे सराहा गया और इस नृत्यशैली को सीखने के लिए छात्रों की संख्या में उत्तोरत्तर बढ़ोतरी होने लगी, जो वर्तमान समय में भी कार्यरत है । उल्लेखनीय है कि आधुनिक समय में भरत नाट्यम् के नाम से पहचाने जानेवाली इस दक्षिणी नृत्य कला का उत्तर भारतीय संगीत में सर्वप्रथम आगमन बड़ौदा में ही हुआ था । उसके लिए हम महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ और मौलाबक्ष के सदैव आभारी रहेंगे ।

इस नृत्य समूह के साथ हीराबाई गोवेकर नामक प्रतिभावान गायिका को भी बड़ौदा में आमंत्रित किया गया था । रिश्ते में वह महाराणी चिमणाबाई की मामी लगती थी । बड़ौदा के मराठा सरदार मारुति राव माने के साथ उनका विवाह हुआ था । इनकी पुत्री ताराबाई माने, का विवाह बड़ौदा के दरबारी गायक उस्ताद अब्दुल करीम के साथ हुआ था । अब्दुल करीम खान और ताराबाई की पुत्री चंपाकली, ने बादमें अपने नानी के नाम से खुद का नाम हीराबाई रख लिया एवं अपने उपनाम में बड़ौदा शहर को जोड़कर हीराबाई बड़ौदेकर के नाम से संगीत की दुनिया में एक महिला कलाकार के रुप में काफि ख्याती अर्जित की । उनके पुत्र अब्दुल रहमान ने भी अपनी बहन की भाँति अपना नाम बदलकर सुरेश बाबु माने रखा और संगीत की दुनिया में प्रतिष्ठा प्राप्त की ।"[५५]

बड़ौदा राज्य की सांगीतिक महिमा का विवरण तब तक नहीं पुरा हो सकता, जब तक बड़ौदा में वाद्य के निर्माण एवं मरम्मत में कुशल मिस्त्री परीवार का उल्लेख न किया जाए । गायकवाड़ राज्य, बड़ौदा में कलावन्त कारखाने में

विभिन्न वाद्यों के जैसे कि सितार, हार्मोनियम, दिलरुबा, वीणा इत्यादि के कलाकार नियुक्त हुए थे ।उनके वाद्यों की मरम्मत एवं नये वाद्य-निर्माण करने के लिए बड़ौदा में तब निष्णात कारीगर उपलब्ध नहीं थे ।एसी स्थिति में बड़ौदा को बाहर के कारीगरों पर आश्रित रहना पड़ता था । उन दिनों बड़ौदा में रघुनाथ मिस्त्री नामक एक वंशानुगत बढ़ई कार्यरत थे । सन् १८७३ में बड़ौदा नरेश ने उन्हें वाद्यों की मरम्मत का काम सौंपा । वाद्यों कि मरम्मत का इस कार्य को उन्होंने चुनौती के रुप में स्वीकार किया था; तथा इस कार्य को पूरी तन्मयता के साथ उन्होंने पूरा कर दिखाया । उनके इसी कार्य नें रघुनाथ मिस्त्री को "कलावन्त कारखाने" का एक प्रतिष्ठित सदस्य बना दिया था । इस विद्या को उन्होंने अपने पुत्रों को भी भली भाँति सिखाया और वाद्य निर्माण एवं मरम्मत की परंपरा को आगे विस्तृत किया ।उनके ज्येष्ठ पुत्र मनसुखराम एवं उनके परिवार को हार्मोनियम की मरम्मत के क्षेत्र में काफी महारथ हासिल थी । देश के कई हिस्सों से कारीगर उनके पास हार्मोनियम मरम्मत की कला सीखने के लिए आते थे । उनमें से कई कलाकार बादमें पालीताणा स्थांनान्तरीत हो गये । वर्तमान समय में पालिताणा गुणवत्ता युक्त हार्मोनियम की बिक्री तथा मरम्मत के लिए अत्यंत प्रसिद्ध-स्थल माना जाता है । हार्मोनियम की मरम्मत में निपुण मनसुख राम ने एक अच्छे बीनकार के रुप में भी अच्छी ख्याति अर्जित की थी ।रुद्रवीणा की तालीम उन्होंने एम.सी.बुवा से प्राप्त की थी । एक प्रसंगानुसार, जब एम.सी.बुवा की रुद्रवीणा को क्षति पहुँची तो उसकी मरम्मत करने का कार्य मनसुख राम को सौंपा गया ।"[५६] गुरु द्वारा सौंपे गये इस कार्य को उन्होंने भली भाँति पूरा किया; और तन्तु वाद्यों की मरम्मत और निर्माण के क्षेत्र में भी अपनी कार्य कुशलता प्रस्थापित की, उनके अनुज छोटेलाल ने भी तन्तुवाद्य के व्यवसाय में खूब प्रतिष्ठा हासिल की ।

सन् १९०४ में बम्बई में आयोजित संगीत के आंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में आयोजित वाद्यों की प्रदर्शनी में मनसुख राम ने वाद्यों को बनाने की कला और उसकी सही तकनीक के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी । इस क्षेत्र में उनके कुशलता एवं मार्गदर्शन के लिए उन्हें स्वर्ण पदक से भी सम्मानित किया गया था । इस प्रदर्शन में उनके द्वारा बनाई गई रुद्रवीणा जिसकी काफी प्रशंसा हुई थी। वह वर्तमान समय में बड़ौदा म्युज़ियम में रखी हुई है ।

मनसुख लाल ने पौत्र सोमाभाई मिस्त्री जिन्होंने रघुनाथ मिस्त्री द्वारा शुरु की गई इस परंपरा को भली भाँति आगे बढ़ाया । तन्तु वाद्य बनाने तथा मरम्मत के कार्य में निपुण होने के लिए सोमाभाई ने इन वाद्यों के नाद और उसकी तकनीक के ज्ञान को समज़ने के लिए बड़ौदा की कॉलेज ऑफ म्युझीक में उस्ताद भिकनखान से सितार और दिलरुबा वाद्यों की शिक्षा हासिल कर के डिप्लोमां पूर्ण किया । इन दोनों वाद्यों में निपुण होकर एक कलाकार के रुप में भी उन्होंने ख्याति अर्जित की थी । वे ऑल इंडिया रेडियो, बम्बई के प्रतिष्ठित कलाकार थे और सन् १९६५ तक, उनके कार्यक्रम प्रसारित किये जाते थे । उनके पिता बापूलाल से भी सोमाभाई को दिलरुबा, तानपुरा, सारंगी, सरोद, रुद्रवीणा, सन्तुर, विचित्रवीणा जैसे शास्त्रीय तन्तुवाद्यों को बनाने की शिक्षा प्राप्त हुई थी । सोमाभाई द्वारा बनाये गये वाद्यों की विदेशों में भी काफी माँग रहती थी । हजरत इनायत खान के पुत्र विलायत खान भी हॉलैन्ड में मिस्त्री के वाद्यों को आयात करवाया था । महाराजा सयाजीराव की पुत्री कमलादेवी को भी सोमाभाई ने हाथीदाँत से निर्मित एक अनमोल सितार भेट की थी । उनके पुत्र कनुभाई मिस्त्री ने बड़ौदा म्युज़िक कॉलेज में, सितार विषय के प्राध्यापक के रुप में कई वर्षो तक अपनी सेवाएँ प्रदान की है । वर्तमान समय में भी उनका पूरा परिवार भारतीय शास्त्रीय वाद्य कि निर्मिती एवं दुरुस्ती कि सेवाएँ प्रदान कर रहा है । ”[५७]

इस तरह महाराजा द्वारा गुजरात में संगीत को दिए गए प्रोत्साहन, कलाकारों को आश्रय, कलावंत कारखाने के नियम, दरबार से बाहर प्रजा के लिए संगीत शिक्षा एवं सांगीतिक मनोरंजन प्राप्त करवाना इत्यादि कार्यों को पृष्ठों में बांधना मुश्किल है । परंतु शोध के विषय को ध्यान में रखते हुवे प्रमुख उल्लेखों को संक्षेप में वर्णित किया गया है ।

१.३.८ कलावंत कारखाने में नियुक्त कलाकारों का संक्षिप्त परिचय

भारत देश अतिप्राचीन काल से ही अपनी परपंरागत संस्कृति, संस्कार, एवं विशेषतः भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए जाना-पहचाना जाता है । साथ-साथ आर्थिक दृष्टिकोण से भी संपन्न और विशाल ऐसे इस देश पर कई विदेशी ताकतों द्वारा बार-बार आक्रमण होते रहे हैं। मुगल और अंग्रेजों ने भारत पर लंबे समय तक शासन किया और अपना वर्चस्व बनाये रखा । परिणामस्वरूप विदेशी संस्कृति-संस्कारों का प्रभाव समाज में रहनेवाले लोगों पर अनायास ही पड़ने लगा । भारतीय देवभाषा संस्कृत, प्राकृत, भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद, एवं गुरु-शिष्य परंपरा अनुसार चलने वाली शिक्षा-पद्धति इत्यादि पर विदेशी शासकों के संस्कार हावी होने लगे । अतः भारत की यह प्राचीन एवं परंपरागत राग संगीत कला कि धरोहर भी लुप्त होने के कगार पर आकर खड़ी हो गई । समाज में राग-संगीत की लोकप्रियता कम होने लगी और लोग इसे सीखने-समझने से परहेज करने लगे थे ।

अतः इन विपरीत स्थितियों में भी भारतीय राग संगीत की इस प्राचीन परंपरा को लुप्त होने से बचाने के लिए यदि किसी ने प्रयत्न किये होंगे, तो वे थे भारत के राजा-महाराजा-बादशाह-जागीरदार इत्यादि । इन महानुभावों ने ही अपने राज-दरबार-महलों में अपने रंजन हेतु ही क्यों न हो भारतीय संगीत को संरक्षण दिया । कला साधकों को आश्रय देकर उनकी कला को प्रोत्साहित किया

और इस लुप्त होती हुई कला को पुनः प्रस्थापित कर उसके भविष्य को सुरक्षित किया ।

काश्मीर, जोधपुर, जयपुर, म्हैसुर, रामपुर, ग्वालियर, पटियाला, तंजौर और बड़ौदा जैसे संस्थानो ने भारतीय राग संगीत को सँजोए रखने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

सन् १८५७ के बाद अंग्रेज शासन के आधीन उपर्युक्त राज्यों के मुकाबले बड़ौदा राज्य ने संगीत को सुरक्षित रखने की दिशा में कई सराहनिय कार्य किये । महाराजा सयाजीराव तृतीय के शासन काल में संगीत को काफी प्रोत्साहन मिला । बड़ौदा नरेश और मौलाबक्ष के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप संगीत को समाज में सम्मान प्राप्त हुआ । देश के प्रतिभावान गायक-वादक-नर्तक, इत्यादि का बड़ा समूह बड़ौदा के "कलावंत कारखाने" में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहा था ।

बड़ौदा राज्य की अन्य एक विशेषता यह थी कि, अन्य रियासतों की तरह बड़ौदा ने कभी भी केवल एक ही शैली या घराने के कलाकारों को प्रोत्साहित नहीं किया; अपितु, विविध शैलियों या घरानों के कई प्रतिभाशाली कलाकारों को दरबार में आमंत्रित किया जाता था ।

जिस प्रकार रामपुर संस्थान में केवल एक ही शैली के घरानों के कलाकारों को आश्रय मिला । इसीलिए वहाँ आश्रित कलाकार "रामपुर सहसवान" घराने के नाम से पहचाने जाने लगे । इसी घराने के वज़ीरखान, मुश्ताक हुसैन खान और निसार हुसैन खान इत्यादि ने रामपुर में अपनी सेवाएँ प्रदान की और अपने घराने का वर्चस्व बनाये रखा ।

ठीक उसी प्रकार ग्वालियर में हददूखान, हस्सूखान, शंकर पंडित, कृष्णराव पंडित इत्यादि ने ग्वालियर घराने का वर्चस्व कायम रखा ।

किन्तु बड़ौदा कभी भी संगीत के एक ही ढाँचे या घरानों में बँधा नहीं रहा । आगरा, पटियाला, रामपुर, किराना, जयपुर–अतरौली घराने के कई कलाकारों को बड़ौदा में आश्रय प्राप्त हुआ । उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ दक्षिण भारतीय संगीत एवं नृत्यों को भी बड़ौदा में आश्रय मिला । अतः यहाँ पर मैं बड़ौदा के कलावन्त कारखाने में नियुक्त ऐसे कुछ प्रतिभावान कलाकारों का संक्षिप्त परिचय देना उचित समझता हूँ ।

ग्वालियर घराने के दो वरिष्ठ एवं प्रतिभावान कलाकार, फैज महम्मद खान और घसिट खान, मल्हार राव गायकवाड़ (१८७०-७५) के समय में दरबारी संगीतज्ञ के पद पर नियुक्त हुए थे । फैज महम्मद खान एक विद्वान कलाकार थे, जिनको संगीत की तालीम उनके पिता महंम्मद खान और बड़े भाई घसीट खान से प्राप्त हुई थी ।

घसीट खान एक उत्तम गायक, बीनकार और सितार वादक थे । सितार पर मींड और घसीट के वादन में आपको अद्‌भुत निपुणता प्राप्त थी । शायद इसी खूबी की वजह से लोग उन्हें घसीट खान के नाम से पुकारते थे । आप के सम्मान में गुजरात के कवि स्वर्गीय नरसिंह भोलानाथ दिवेटिया ने कुछ पक्तियाँ इस प्रकार लिखी हैं ।

"अंतरिक्ष तक मधुरता वाद्य ये
गगन में चमकता तारे के समान
ज्योति धारण करता शरीर है।"

मौलाबक्ष को संगीत शिक्षा घसीट खान से ही प्राप्त हुई थी । मौलाबक्ष के समकक्ष फैज महम्मद खान ने भी सयाजीराव के समय में अपनी संगीत शाला शुरु की थी, जिसको यथोचित सफलता न मिलने से उसे बंद करना पड़ा था । फैज महंम्मद खान के प्रमुख शिष्यों में भास्कर बुवा बखले, बापूराव निगोसकर इत्यादि नाम उल्लेखनीय है ।"[५८]

नासर खान (१८२०-१९०३) : खंडेराव महाराज के समय में नासर खान को आमंत्रित किया गया था । वे एक विख्यात पखावज वादक थे । बड़ौदा स्थानांतरित होने से पहले नासरखान लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह के दरबारी संगीतज्ञ थे । १८५६ के बाद वे बड़ौदा में स्थायी हो गये थे । उनके प्रमुख शिष्यो में जोशी और हिम्मतलाल बक्षी नाम थे ।

जमालुद्दीन खान :- प्रसिद्ध बीनकार जमालुद्दीन खान महाराजा सयाजीराव तृतीय के समय में, करीब १९१० में बड़ौदा दरबार में आमंत्रित किये गये थे । २० वी शताब्दी के श्रेष्ठतम बीनकार में उनकी गणना की जाती थी । सेनिया घराने की गोबरहारी बानी और राजस्थान की खंडहारी बानी के संयुक्त मिश्रण से अपनी एक स्वतंत्र वादन-शैली का जमालुद्दीन खान ने निर्माण किया था । दोनों बानियों के सम्मिश्रण के परिणामस्वरुप ही सितार में बजाये जानेवाली मसीतखानी गत के रुप में आवश्यक सुधार किया गया था । जमालुद्दीन खान ने कई शिष्यों को तालीम दी थी, उनमें से प्रमुख थे प्रसिद्ध -विचित्र-वीणा वादक अब्दुल अजीजखान, अब्बास हुसैन खान, पुत्र आबिद हुसैन । जमालुद्दीन के सन् १९२७ में निधन के बाद आबिद हुसैन खान ने सन् १९३८ तक बड़ौदा में बीनकार के रुप में अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं ।

सयाजीराव की धर्मपत्नी श्रीमती चिमनाबाई-२ को भी उस्ताद जमालुउद्दीन खान से वीणा की तालीम प्राप्त हुई थी । गायनशाला के प्रिन्सिपाल

डॉ. हिरजीभाई को विचित्र-वीणा की तालीम भी जमालुउद्दीन खान से ही प्राप्त हुई थी । जमालुउद्दीन के पुत्र आबिद हुसैन खान ने अपने पिताजी की परंपरा को गतिशील रखते हुए कई शिष्यों को गायन एवं वादन की तालीम प्रदान की थी । पुरषोत्तम दास जिन्होने गायन के साथ-साथ दिलरुबा, पखावज और तबला जैसे वाद्यों की तालीम आबिद हुसैन से प्राप्त की थी । अन्य प्रतिभावान शिष्यों में सितार वादक बिमल मुखर्जी जिन्होने बड़ौदा में रहकर आबिद हुसैन से सितार वादन की तालीम प्राप्त की थी । सन् १९७८ में इन्दौर में आबिद हुसैन का निधन हुआ ।"[५९]

फिदा हुसैन खान (१८८३) : रामपुर घराने गायक फिदा हुसैन खान ने करीब २० वर्षो तक बड़ौदा संस्थान में अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं । बाद में वे रामपुर लौट गये थे । अपने पुत्र निसार हुसैन खान को संगीत की तालीम देकर तैयार किया था ।"[६०]

निसार हुसैन खान (१९०८): निसार हुसैन खान ने भी बड़ौदा में सांगीतिक सेवाएँ प्रदान की थी । उन्होंने गायकी की अपनी अलग शैली को विकसित किया था । विशेषतः तराना गायकी के कारण वे अधिक प्रचलित हुए थे। जब गायनशाला को म्युजिक कॉलेज के नाम से पहचाना जाने लगा, उस वक्त निसार हुसैन खान ने संगीत शिक्षक के रुप में बड़ौदा म्युजिक कॉलेज में अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं । सयाजीराव के स्वर्गवास के पश्चात निसार हुसैन खान की आइ.टी.सी एस.आर.ए भवन में गुरु /उस्ताद के पद पर नियुक्ति की गई थी।"[६१]

अब्दुल करीम खान : किराना घराने के संस्थापक अब्दुल करीम खान ने करीब चार वर्षों तक बड़ौदा दरबार में अपनी सेवाएँ प्रदान कीं । लोकप्रियता हासिल होने से पहले वे अब्दुल करीम खान बड़ौदेवाले के नाम से खुद का परिचय करवाते थे । बड़ौदा पैलेस में महिलाओं को एवम् मौलाबक्ष की

गायनशाला में छात्रों को संगीत का शास्त्र सिखाने का कार्य भी वे करते थे । उनकी पुत्री हिराबाई बड़ौदेकर ने भी संगीत की दुनिया में अपना नाम रोशन किया था ।"[६२] देश की बुलबुल के नाम से पहचानी जाने वाली सरोजिनी नायडु ने हीराबाई को गानकोकिला के नाम से संबोधित किया था । जगतगुरु शंकराचार्य ने भी उनको गान सरस्वती के नाम से सम्मानित किया था। हीराबाई की माताश्री ताराबाई माने भी दरबारी कलाकारा थीं ।

कोल्हापुर की लक्ष्मीबाई जाधव ने करीब २३ वर्षो तक (१९२२-१९४५), बड़ौदा में अपनी सांगीतिक सेवाएँ प्रदान की थीं। लंबे समय तक बड़ौदा में रहने की वजह से संगीत जगत में उन्हें लक्ष्मीबाई बड़ौदेकर के नाम से ही पहचाना जाता था । वे अल्लादियाँ खान के जयपुर-अत्रोली घराने की प्रतिभावान गायिका थीं । अल्लादियाँ खान के भाई हैदर खान से उन्होंने संगीत की तालीम प्राप्त की थी । उल्लेखनिय है कि "हिजमास्टर्स वॉयस" तथा "यंग इण्डिया कम्पनी" द्वारा लक्ष्मीबाई के लगभग ५० ग्रामोफोन रेकार्डस् प्रकाशित हुए थे ।"[६३]

फैयाज खान – महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने दरबार के वरिष्ठ कलाकार फैज महंम्मद खान से विनती की कि वे पूरे देश का भ्रमण करें और राज्य के लिए प्रतिभाशाली और युवान कलाकार की खोज करें । इस कार्य हेतु फैज महंम्मद खान आग्रा पहुँचे, वहाँ उन्होंने फैयाज खान का गायन सुना, उनके गायन से प्रभावित होकर वे फैयाज खान को बड़ौदा लेकर आये । "होली" के अवसर पर फैयाज खान का गायन सुनकर महाराजा काफी प्रभवित हुए और तुरन्त फैयाज खान को दरबारी गायक के रुप में नियुक्त किया था । बड़ौदा आने से पहले फैयाज खान मैसूर (१९१५-१६) में भी अपनी सेवाएँ प्रदान कर चुके थे। फैयाज खान के गायन से प्रभावित होकर मैसूर नरेश ने उन्हें "आफताब-ए-मौसिकी" (संगीत का सूर्य) की उपाधि से नवाजा था ।

आग्रा घराने के पर्याय बने फैयाज खान ने संगीत की असीम उँचाइयों को छुकर बड़ौदा का नाम रोशन किया था ।"प्रेमपिया" के उपनाम से कई सांगीतिक रचनाएँ भी उन्होंने निबद्ध की थी । आफताब-ए-मौसिकी, संगीत रत्नाकर, संगीत चूड़ामणि, संगीतसम्राट जैसीं कई उपाधियों से फैयाज खान को सम्मानित किया गया ।सन् १९२२ में फैयाज खान को गायनशाला में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया था ।सन् १९२६ से १९२८ में गायनशाला के अधींक्षक के रुप में भी उन्होने अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं ।महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी से संलग्न होने के बाद बड़ौदा म्युजिक कॉलेज के नाम से पहचाने जाने वाले संगीत विद्यालय में भी फैयाज खान को अतिथि प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया था । ३० जनवारी १९४८, महात्मा गांधी के दु:खद निधन के बाद ऑल इंडिया रेडियो ने फैयाज खान को भक्तिगीत गाने के लिए आमंत्रित किया । गांधीजी के प्रिय भजन "वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड़ पराई जाणे रे" को गाकर फैयाज खान ने गांधीजी को सांगीतिक श्रद्धांजलि अर्पित की थी ।सन् १८८१ आगरा में जन्मे फैयाज खान का ५ नवंबर, १९५० में बड़ौदा में स्वर्गवास हुआ । उनके प्रमुख शिष्यों अता हुसैन, बंदे हुसेन, अलताफ हुसैन, शराफत हुसैन, बसीर खान, के.जी.गिंडे, एन.रातनजनकर, दिनकर कैकणी इत्यादि ने फैयाज खान की गायकी को अमरत्व प्रदान किया ।"[६४]

गणपतराव वसईकर : गणपतराव का जन्म १८६३ में महाराष्ट्र के वसई नामक गाँव में हुआ था ।शहनाई वादन की घरानेदार परंपरा से आए वसईकर ने बचपन से ही शहनाई बजाना शुरू किया था ।बंम्बई के उस्ताद नजीर खान से उन्होंने गायन की शिक्षा भी अर्जित की और साथ-साथ बंदूमियाँ से तबला भी सीखे ।शहनाई वादन में सुधार एवं उसे संपूर्ण वाद्य बनाने के लिए उन्होंने गायन एवं तबला की शिक्षा लेना महत्वपूर्ण समझा था ।मंगल वाद्य के रुप में पहचाने जाने वाले शहनाई वाद्य का शुभ प्रसंग, वार त्योहारों पर अवश्य वादन किया

जाता है । केवल शुभ अवसरों पर बजाए जाने वाले इस वाद्य को सयाजीराव ने एक स्वतंत्र वाद्य की पहचान दिलाई और उसकी शिक्षा प्रणाली को भी प्रोत्साहन दिया । बड़ौदा में शहनाई वाद्य के विकास का श्रेय मशहुर शहनाई वादक गणपतराव पिराजी वसईकर को जाता है । गणपतराव वसईकर सम्पूर्ण भारत में शहनाई वादन के लिए प्रसिद्ध थे । एक शुभ अवसर पर मकरपुरा पैलेस में वसईकर जी के शहनाई वादन से महाराजा काफी प्रभावित हुऐ । महाराजा हंमेशा सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा को अपने राज्य में आमंत्रित करके राज्याश्रय देने में अग्रेसर रहते थे । महाराजा ने सन् १९१४ में वसईकर जी को कलावंत कारखाने में करार बद्ध किया था । मूल भारतीय और मंगल वाद्य के रुप में पहचाने जाने वाले शहनाई वाद्य का बड़ौदा में आगमन का यह प्रथम अवसर माना जा सकता है ।

शहनाई वाद्य के प्रशिक्षण के लिए गायनशाला में शहनाई की कक्षाएँ शुरु करने का प्रस्ताव महाराजा ने वसईकर जी के समक्ष रखा, जिसका उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और इस तरह गायन शाला में और एक विषय शहनाई वाद्य के रुप में सम्मिलित हुआ, जिसकी शास्त्रोक्त शिक्षा दी जाने लगी। शहनाई वादन पाठयक्रम की अवधि पाँच वर्ष की होती थी । शहनाई वादन के अध्ययन में मदद के लिए "शहनाई वादन पाठमाला" नामक चार क्रमिक पुस्तकें भी प्रकाशित की गई थी । इस पाठशाला में प्रशिक्षण हेतु पुणे के सुप्रसिद्ध शहनाई वादक पं. शंकरराव गायकवाड़ जी को भी आमंत्रित किया गया था । उल्लेखनिय है कि पं. शंकरराव गायकवाड़ देश के सर्वप्रथम शहनाई वादक थे, जिनके शहनाई वादन कि सन् १९२७ से १९३० के बीच "हिजमास्टर्स वॉयस" कम्पनी द्वारा कई ग्रामोफोन रेकार्डस् भी प्रकाशित की गई थी।"[६५]

शहनाई वादन पाठशाला यह भारत वर्ष की एकमात्र पाठशाला थी, जहा शहनाई जैसे कठीन वाद्य की वैज्ञानिक पद्धति से शिक्षा प्रदान की जाति थी।

अनूठे प्रकार की यह शाला और उसके पुस्तकें पूर्ण भारत में काफी प्रसिद्ध हो चुकी थी । उल्लेखनिय है कि आज भी यह पुस्तकें शहनाई वादन की शिक्षा के लिए काफी महत्वपूर्ण मानी जाति है ।

पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने भी वसईकर के शहनाई वादन से प्रभावित होकर बंम्बई में शहनाई की प्रस्तुति एवं उसकी कक्षाएँ लेने हेतु आमंत्रित किया था । सन् १९१६ में बड़ौदा में आयोजित प्रथम अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का उद्घाटन भी गणपतराव जी के शहनाई वादन से ही किया गया था । गणपतराव को अहमदाबाद, गांधी आश्रम में भी अपनी शहनाई वादन की प्रस्तुति का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । सन् १९३९ में महाराजा ने गणपतराव को "कला ज्योति" नामक उपाधि से सम्मानित किया था । उन्हें दरबार में महाराजा के पास एक आसन प्रमुख रुप से प्रदान किया गया था ।"[६६]

शहनाई वादन पाठशाला में प्रशिक्षण लेने आने वाले छात्रों को राज्य की ओर से १० रुपये की छात्र वृत्ति दी जाती थी । इस संस्था के कुछ प्रसिद्ध छात्रों में, नरहरि राव पंडित, गोविंदराव शिंदे, गणपतराव बिडवे, शंकरराव पेटवडकर, भगवंतराव वाघमारे, गंगाधर संत इत्यादि ने बड़ौदा में शहनाई वादन एवं शिक्षा के क्षेत्र में अपना अहम योगदान दिया । वसईकर की मृत्यु सन् १९४८ में ८५ वर्ष की आयु में हुई ।

उल्लेखनिय है कि वर्तमान समय में भी संत, भोंसले, शिर्के, गायकवाड़ परिवारों ने भी शहनाई वादन की परंपरा को भलिभाँति संजोएँ रखा है । विशेष बात है कि गुजरात के सभी प्रांतो के मुकाबले में बड़ौदा में सबसे अधिक संख्या में शहनाई वादक अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे है ।

उस्ताद भीकन खान दिलरुबा, जलतरंग और सितार वाद्यों को बजाने में अपनी विशेषज्ञता रखते थे । साथ-साथ उन्होंने राज्य के लिए वाद्य वृंद की भी

रचना की थी । वाद्य वृंद के अनुरुप कई सांगीतिक रचनाएँ उन्होंने बनाई थी । राज्य के सयाजी उद्यान में हर मंगलवार को प्रजा के मनोरंजन हेतु इस वाद्य वृंद की प्रस्तुति करने का कार्य भीकन खान को सौंपा गया था, जिसे उन्होंने बखूबी निभाया । उनके पुत्र अनवर खान और सरवर खान ने बड़ौदा म्युजिक कॉलेज में सितार विषय के गुरु के पद पर कई वर्षों तक अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं ।"[६७]

ऐसे कई प्रतिभावान कलाकारों का बड़ा समूह "बड़ौदा कलावंत कारखाने" में अपनी सेवाएँ दे रहा था । कलाकारों की संख्या अधिक होने के कारण सभी की विस्तृत जानकारी देना संभव नहीं होने से केवल कुछ कलाकारों के नामों की सूचि नीचे दी जा रही है –

१. गायक कलाकारों की सूची- (क) पुरुष गायक कलाकार : मथुरा के देवीदास, फैज महम्मद खान, रहमत खान (मौलाबक्ष के जमाई और सूफी इनायत खान के पिताश्री) अब्दुल करीम खान, फैयाज खान, खादिम हुसैन खान, तसाद्क हुसैन, अन्ना साहेब रातनजनकर, हैदरखान के पुत्र फिदा हुसैन, निसार हुसैन खान, पटियाला घराने के गुलाम हुसैन खान, करीम हुसैन खान, रमजान अली खान.

(ख) महिला गायक कलाकार- इदनजान (देहरादून), हीराबाई गोवेकर, हंसाबाई, लक्ष्मीबाई जाधव (कोल्हापुर), अंबा कोतवालीन ।

२. वादक कलाकारो की सूची-

शहनाई वादक - गणपतराव वसईकर, शंकरराव गायकवाड़ (पुणे), गणपतराव बिड़वे, गोविंदराव शिंदे, गंगाधर संत, नरसिंहराव पंड़ित, भगवंत राव वाघमारे, शंकरराव पेटवड़कर ।

बीनकार - घसीटखान, मौलाबक्ष, जमालुद्दीन खान, आबिद हुसैन, अली हुसैन ।

सितार वादक - घसीटखान, बन्नू खान, अली हुसैन (बन्नु खान के पुत्र), अम्मु खान, पंडित गोविंद शर्मा, भिकन खान, गणेश सदाशिव बापट ।

ताऊस वाले - घसीटखान, इनायत खान, रजा हुसैन प्यार खान,

दिलरुबा वादक - महम्मद जान (मुरादबक्ष के पुत्र), रजा हुसैन प्यार खान, भीकन खान ।

विचित्र वीणा वादक - डॉक्टर हीरजीभाई पात्रावाला ।

सारंगीवादक - मम्मू मियाँ, मुनिर खान ।

हार्मोनियम वादक - पिलोबा बाबाजी, गुलाम रसुल खान ।

जलतंरग वादक - मौलाबक्ष, इनायत खान, आमिर खान गुलखान, गुलाब सागर, गजाननराव अंबाड़े ।

पखावज वादक - नासर खान, गंगाराम कुंदन सिंग ।

तंबूरा वादक - करीमबक्ष, हसमत अली, मुनिर खान ।

तबला वादक - अजीमबक्ष, इमामअली, इनायत अब्बास खान, करमबक्ष और उनके पुत्र कुबेर सिंह, गोविंद सिंह, इलाहीबक्ष ।

डफवाले –विठु बाबाजी, काशीनाथ गोविन्द ।

३. नृत्य कलाकारों की सूची -

कत्थक नृत्य– जबेनबाई, सक्वारबाई, बिबेनबाई, छम्मूजान, अच्छनजान, गौराबाल बादकर ।

भरतनाट्यम् नृत्य- गौराजी, कांतामती, सरस्वती, रत्नमाला

गायन और नृत्य करनेवाली- ईदनजान दहेरादूनवाली, लश्मी कोल्हापुरकरीण

४. नाटक मण्डली - किर्लोस्कर मण्डली, गंधर्व नाटक मंडली, ब्रहमा यूनियन क्लब इत्यादि

५. पाश्चात्य बैन्ड मास्टर –उस्ताद अल्लाउद्दीन मौलाबक्ष पठान, मि. फ्रेडलिक्स, मि.वुड ।

६. गरबा – भगवान दास, इच्छा गौरी और उनकी पुत्रियाँ मणी, माणेक ।

७. गुरव ताफा - गणपतराव, शंकर बापुजी, खंडु धोंडी, भीकाजी हरी, गोविंद रामचंद्र ।

८. होलार ताफा- महादु सावळेराम, शंभु महादु, वीठु बाबाजी, मारुती सखाराम, गंगाराम तान्हाजी ।" [६८]

सन्दर्भ

१. देसाई चुनीलाल मगनलाल, (१९२६), वडोदरा राज्य नो इतिहास, श्री सयाजी साहित्य माळा, प्रकाशक-एम.सी. कोठारी, रावपुरा वड़ोदरा, प्रथमावृत्ति, पृ.१ से ७ ।

२. Bakhle Janaki, (2005), Two Man and Music: Nationalism in the Making of a ClassicalTradition, Oxford University Press, New York, 25, p.22.

३. कुलकर्णी दीप्ती दामोदर : (२००७) शोध-प्रबंध-श्री सयाजी साहित्य माला एक चिकित्सक अभ्यास, प्रकरण-१-गायकवाड़ घरान्याचा थोडक्यात इतीहास, मराठी विभाग, दि म.स युनि.ऑफ बरोड़ा, पृ.१, २ ।

४. वही, पृ.३ ।

५. वही, पृ.४, ५ ।

६. वही, पृ. ६ ।

७. Mehta R.C. (2-24th October 2008), Article -The musical heritage of Baroda: A brief note sarjan art gallery Baroda: a tale of two cities, p.33.

८. Upadhyay Rupal (Dec.2015), Ph.D thesis, Broda: Pre-Modern Basis And The Modernizing project of sir sayajirao III, Dept.of History, Faculty of Arts, The M.S. Uni of Baroda, p.45.

९. वही, पृ.२७४ ।

१०. Mehta R.C., Article -The musical heritage of Baroda, p.33.

११. वही, पृ.३३ ।

१२. Upadhyay Rupal, p.274.

१३. Mehta R.C., Article -The musical heritage of Baroda, p.34.

१४. कलावंत खात्याच्या अंतर्व्यवस्थेसंबंधी नियम. भाग-२(१९२५), बडोदें, सरकारी.छापखाना, फॅकल्टी ऑफ परफोर्मिग आर्टस् पुस्तकालय, पृ.१ ।

१५. Mehta R.C., Article -The musical heritage of Baroda, p.34.

१६. Bakhle J, p. 20.

१७. वही, पृ.२३ ।

१८. वही, पृ.३६ ।

१९. वही, पृ.२४ ।

२०. कलावंत खात्याच्या अंतर्व्यवस्थेसंबंधी नियम. भाग-२(१९२५), बड़ोदें, सरकारी.छापखाना, फॅकल्टी ऑफ परफोर्मिग आर्टस् पुस्तकालय, पृ.१ ।

२१. वही, भाग-२, पृ.७ से १८ ।

२२. वही, भाग-२, पृ.७ से १८ ।

२३. Bakhle J, p.p.30- 31.

२४. क.खा.अं नियम, भाग-१, पृ.६ ।

२५. आपटे दाजी नागेश आपटे, (१९३३), श्री सयाजी गौरव ग्रंथ, संपादक व प्रकाशक वाढदिवस-मंडळ, बडौदे व मुंबई, लेख-श्री सयाजीराव गायकवाड़ व ललितकला, श्री सयाजी साहित्य माला, हंसा मेहता पुस्तकालय, दि म.स युनि.ऑफ बरोड़ा, पृ.४३७ ।

२६. Bakhle J, p.25.

२७. वही, पृ.२६७ ।

२८. वही.पृ.२६ ।

२९. वही, पृ.३२ ।

३०. वही, पृ.२८ ।

३१. वही, पृ.३२ ।

३२. वही, पृ.२७ ।

३३. क.खा.अं नियम, पृ.१० ।

३४. Bakhle J, p.p.27-28.

३५. वही, पृ.३० ।

३६. वही, पृ.३३ ।

३७. पटेल अलकनंदा (मार्च १९९६), सयाजी स्मृती अंक, अंक-३, लेख- गायकवाड राजवंश का संगीत संरक्षण, पृ.२०।

३८. श्रीमन्ममहाराजसयाजीराव गायकवाड यांची भाषणे, (१९३७) द्वितीय खंड, प्रकाशक-दामोदर सांबळारामआणी मंडळी, पृ.१७७, १७८,१७९ ।

३९. वड़ोदरा राज्य मां संगीत शिक्षण, (१९४१-४२) वडोदरा सरकारी छापखाना, प्रकाशन पत्रिका अंक १९, श्री सयाजी साहित्य माला-विविध पत्रिकाओं का एकत्रीकरण, हंसा मेहता पुस्तकालय, दि म.स युनि.ऑफ बरोड़ा, पृ.३, १२ ।

४०. क.खा.अं नियम, पृ.८५ ।

४१. वड़ोदरा राज्य मां संगीत शिक्षण, पृ.१२ ।

४२. विजयकुमार संत, वड़ोदरा, से प्रत्यक्ष मुलाकात आधारित, १२-०४-२०१८।

४३. वडोदरा राज्य मां संगीत शिक्षण, पृ.११ ।

४४. क.खा.अं नियम, भाग-२, पृ.१० ।

४५. वही, भाग-२, पृ.९ ।

४६. वही, भाग-२, पृ.१९ ।

४७. निगम प्रिति. (१९९८) शास्त्रीय संगीत के उन्नयन में बड़ौदा राज्य का योगदान सन् १८५० के उपरांत, शोध-प्रबंध, इंदीरा कला संगीत. विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (म.प्र), पृ.२०६ ।

४८. वही, पृ.२०७ ।

४९. वही, पृ.१७२ ।

५०. Rupal upadhyay,(Dec.2015), Broda : Pre-Modern Basis And The Modernizing project of sir sayajirao III, Ph.D thesis, Dept.of History, Faculty of Arts, The M.S. Uni of Baroda, p.282.

५१. निगम प्रिति, शोध-प्रबंध, १९९८.पृ.१७५ ।

५२. वही, पृ.१२१ ।

५३. Shah Parul, (2-24th October 2008) Dance in Baroda, sarjan art gallery-Baroda: a tale of two cities, p.77.

५४. पेठे कृणाल, दीव्य भास्कर, City भास्कर, वड़ोदरा, २१-१-१८, Sunday, पृ.३ ।

५५. पेठे कृणाल, दीव्य भास्कर, City भास्कर, वड़ोदरा, २१-१-१८, Sunday, ३१-१२-१७, पृ.३ ।

५६. मिस्त्री धवल, वड़ोदरा, से प्रत्यक्ष मुलाकात आधारित,१२-०४-२०१८ ।

५७. The heritage of musical instruments (1990), the department of Museums, Gujarat state, editor-dr.s.k.bhowmik & Dr. Mudra jani India, p.p.249- 250.

५८. निगम प्रिति, शोध-प्रबंध, १९९८, पृ.१४४ ।

५९. Mehta R.C., Article -The musical heritage of Baroda, p.34.

६०. वही, पृ.३६ ।

६१. वही, पृ.३६ ।

६२. वही, पृ.३८ ।

६३. निगम प्रिति, शोध-प्रबंध, १९९८, पृ.१२४ ।

६४. R.C.Mehta, Article -The musical heritage of Baroda, p.39.

६५. संत आशा विजय, पं. शंकरराव गायकवाड़ की पोती, से प्रत्यक्ष मुलाकात आधारित, ११-०३-२०१७ ।

६६. निगम प्रिति, शोध-प्रबंध, १९९८, पृ.१४४ से १४९ ।

६७. क.खा.अं नियम, भाग-२, पृ.९१, ९३, ९६, १००, १०१ ।

६८. वही, पृ.९१-१०१ ।